श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं. ९९.

श्री नयचक्रसार.

(हिन्दी अनुवाद)

द्रव्य सहायक,

श्री संघ–लुणावा (मारवाड़)

अनुवादक,

शाहा मेघराजजी मुनोत–फलोदी.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला पुष्प न.

श्रीमद्रत्नप्रभसूरीश्वरसद्गुरुभ्यो नमः

श्रीमद्देवचन्द्रजी महाराजकृत

नयचक्रसार

(हिन्दी अनुवाद सहित)

अनुवादक,

शाह लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराजजी मुणोत.

मुः फलोदी.

प्रकाशक.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.

मुः फलोदी (मारवाड़)

भावनगर—आनंद प्रीन्टींग प्रेस में

शाह गुलाबचंद लल्लुभाइने मुद्रित किया.

प्रथमावृत्ति १००० वीर संवत् २४५५

विक्रम सं० १९८६ ओसवाल संवत् २३८६

किंमत ०-६-० आना.

सूचीपत्र.

विषय	पृष्ठ
१ मंगलाचरण	१
२ तत्त्व स्वरूप	३
३ लक्षण स्वरूप	३
४ द्रव्य स्वरूप	४
५ गुण लक्षण	६
६ द्रव्य लक्षण	८
७ अन्य दर्शनीय मंतव्य	१०
८ छे द्रव्यों में सप्रदेशी अप्रदेशी..	१२
९ पंचास्तिकाय का भिन्न २ स्वरूप	१४
१० जीव का लक्षण	१८
११ काल का लक्षण	१९
१२ सामान्य विशेष स्वभाव लक्षण	२२
१३ छे सामान्य स्वभाव	२४
१४ तेरह विशेष स्वभाव	२७
१५ अस्ति स्वभाव का लक्षण	२८
१६ नास्ति स्वभाव का लक्षण	२९
१७ सप्तभंगी ,,	३०
१८ सप्तभंगी स्वरूप	३६
१९ अस्ति नास्ति धर्म न मानने से दूषण	४४
२० स्याद्वाद का स्वरूप	४५
२१ सप्तभंगी	५६
२२ नित्यानित्य स्वभाव	६५
२३ नित्यानित्य स्वभाव न मानने से दूषण	७६
२४ एक अनेक स्वभाव	७७
२५ ,, ,, न मानने से दूषण	७७
२६ भेदाभेद स्वभाव	७८
२७ ,, ,, न मानने से दूषण	७९
२८ भव्याभव्य स्वभाव	८०
२९ ,, ,, न मानने से दूषण	८३
३० वक्तव्यावक्तव्य स्वभाव	८४
३१ ,, ,, न मानने से दूषण	८५
३२ परम स्वभाव	८५
३३ विशेष स्वभाव का स्वरूप	८६
३४ षट् द्रव्य के गुणपर्याय	९१
३५ नयाधिकार	९३
३६ निक्षेप स्वरूप	९५
३७ नय स्वरूप विशेषावश्यकानुसारेण	
३८ नय स्वरूप स्याद्वाद रत्नाकरात्	
३९ प्रमाण स्वरूप	
४० ग्रन्थ समाप्ति दूहा	
४१ ,, ,, सवईया	

॥ निवेदन ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज के बनाये हुवे सभी ग्रन्थ प्रायः द्रव्यानुयोग विषयिक हैं. तथापि इस नयचक्रसार में जैसा षट्द्रव्य और स्याद्वाद के स्वरूप को प्रतिपादन किया है वैसा अन्य ग्रन्थों में नहीं है. इस छोटे से ग्रन्थ में न्यायप्रियता के साथ अन्य दर्शनियों का निराकरण करते हुवे जैन सिद्धान्तों के तत्वों का ऐसा प्रतिपादन किया है कि यह तर्कविषयि सर्व साधारण के लिये अपूर्व ग्रन्थ है। पूर्व महर्षियों के बनाये हुवे—सम्मतितर्क, नयचक्रवाल, स्याद्वादरत्नाकर, तत्वार्थप्रमाण वार्त्तिक, प्रमाणमिमांसा, न्यायावतार, अनेकान्तजयपताका, अनेकान्तप्रवेश, प्रमेयरत्नकोष और धर्मसंग्रहणी आदि तर्कशास्त्र विषयिक अनेक बडे २ ग्रन्थ है उन्ही ग्रन्थों को मथन कर के बाल जीवों के हितार्थ उक्त महात्माने इस ग्रन्थ को जिस खूबी के साथ प्रतिपादन किया है वह अपने ढंगपर एक अनोखा ही ग्रन्थ है. इस का गुजराती भाषान्तर भी ग्रन्थ कर्ताका ही किया हुआ है.

ऐसे तार्कीक द्रव्यानुयोग विषयिक ग्रन्थ का एक भाषा से दूसरी भाषा में परिवर्तन करना सामान्यावबोधवाले का काम नहीं है. जो द्रव्यानुयोग का पूर्ण ज्ञाता हो, तर्कशास्त्र पढा हो वही इस की अच्छी तरह व्याख्या करके समझा सकता है. इस ग्रन्थ को यथार्थतया हिन्दी अनुवाद करने के लिये में असमर्थ हूं तथापि केवल अपनी बोधवृद्धि के लिये मन की अति उत्कंठा से प्रेरित होकर यह अनुवाद किया है. संभव है कि अल्पज्ञता के कारण कई जगह गलतीयां रहगई हो इसके लिये तत्वरसिक पाठकोंसे नम्र निवेदन है कि वे क्षमाप्रदान करके सुधार कर पढने की कृपा करेंगे सुज्ञेषु किंबहुना।

भवदीय—मेघराज मुणोत—फलोधी.

जाहेर खबर.

		कीमत.
शीघ्रबोध भाग १ से २५	....	९-०-०
ज्ञानविलास (२५ पुस्तकें एक जिल्द)	....	१-८-०
जैन जाति निर्णय प्रथम द्वितीय अंक	....	०-४-०
शुभ मुहूर्त्त शकुन स्वरोदय	....	०-२-०
ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय	....	०-२-०
धर्मवीर जिनदत्त शेठ (कथा)	....	०-२-०
उपकेश ज्ञाति का (ओसवाल) पद्यमय इतिहास		०-१-०
सादड़ी के तपगच्छ और लुंपकमत० दिग्दर्शन....		०-४-०
मुखवस्त्रिकानि० निरीक्षण	....	०-१-०
तस्करवृत्ति का नमूना	....	०-१-०
पंच प्रतिक्रमण सूत्र पक्का पूंठा	....	०-४-०
समवसरण प्रकरण	....	भेट
पांचों कर्मग्रन्थ हिन्दी अनुवाद	.... ..	०-४-०

शेष पुस्तकों के लिये सूचीपत्र मंगवाईये.

मिलने का पत्ता—

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला.

मु० फलोधी (मारवाड).

वाली श्री संघ का अति आग्रहसे फैंसला देनेवाले

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज ।

जैन दीक्षा १९७२

स्थान. दीक्षा १९६३

जन्म सं. १९३७ विजयादशमी.

आनंद प्रि. प्रेस—भावनगर.

पुष्पाञ्जली.

पूज्यपाद मुनि श्री १००८ श्रीज्ञानसुन्दरजी महाराज साहिब के

करकमलों में

आपश्री जैसे जैन सिद्धान्तों के तत्वज्ञ और द्रव्यानुयोग के ज्ञाता है वैसे ही आपश्री के व्याख्यान में भी अपूर्वता है कि चारों अनुयोगवाले श्रोतागण अपने २ रस को पाकर संतोषित होते हैं. आप के तीन चातुर्मास (सं. १९७७–७८ –७९) फलोधी होने से जनता को सिद्धान्तों के श्रवण और तत्वबोध की प्राप्ति का जो अपूर्व लाभ मिला जिस में खास कर मुझ पर आपश्री का जो तत्वज्ञ प्रेमभाव रहा उस के लिये में सदा कृतज्ञ हूं. आपने मेरे हृदय में जिस उत्साह के साथ तत्त्वज्ञता के श्रोत का उद्गम किया है जिस के प्रवाह से आज पर्यन्त बोधलता का सींचन हुवा करता है और उसी का यह एक पुष्प आपश्री के करकमलों में स्मरणार्थ अर्पण करता हूं जिसे आप सहर्ष स्वीकार करेंगें.

हाल मुकाम
दुकान खैरागढ सी. पी.
ता. १–४–२९

आपका चरणोपासक
मेघराज मुणोत
फलोधी–(मारवाड़)

शुद्धिपत्र.

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
पुष्प नं. ६४	पुष्प नं. ६५	१	१	पांचका	पांचवां	४०	१७
को	के	२	१	पंचास्तिकये	पंचास्तिकाये	४३	१८
सो	सौ	६	२०	गर	मगर	५०	११
सो	सौ	६	२१	विधिनिबेध	विधिनिषेध	६३	२१
जल्प	छल	१०	१७	का	की	६३	१
कहत	कहते	१२	११	रूपोनित्य	रूपोऽनित्य	६५	६
प्रवेश	प्रदेश	१२	१६	व्ययरूपनित्य	व्ययरूप अनित्य	६५	१३
प्रवेश	प्रदेश	१२	१७	परिमनात	परिणमनात	६८	५
क्षेत्र	क्षेत्रों	१३	६	करणस्यापि	कारणस्यापि	६८	६
स्थित्युपद्दभ	स्थित्युपष्टंभ	१४	१४	घटा	घट	७१	६
धर्मास्ति	अधर्मास्ति	१४	१५	अभेद्भाये	अभेदाभावे	७८	६
अस्तिकायात्व	अस्तिकायत्व	१६	३	उत्थितासीत्	उत्थितासीनो	८०	५
अनेक	नेक	१६	७	पुरूषवत्	पुरूषवत्त	८०	६
खरूप	स्वरूप	२०	१८	देवत्व	देवच	८०	६
एंठ	ऐंठ	२०	१६	रूदासीवता	रूदासीना	८०	१०
स	से	२१	५	निरो	तिरो	८०	११
घर	घट	३०	५	परिणते	परिणमते	८०	१२
परपर	पर्शपर	३६	२	वक्तव्यभावे	वक्तव्याभावे	८३	१८
नास्ति	नास्तिता	३६	११	अव्यक्तव्यभावे	अव्यक्तव्याभावे	८३	१६
अस्ति	नस्ति	३६	१३	भव	भाव	८३	२०

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	पंक्ति
नन्नधर्म	नन्तधर्म	८६	१५
कारण	करण	८६	१३
क्रिया	क्रिय	६१	६
क्रिया	क्रिय	६१	७
अचेतना	अचेतन	६१	८
गंध	गन्धरस	६३	७
द्रव्यव्यंजन	द्रव्य	६४	१
निखसेस	निरवसेस	६५	२१
च उक्कं	चउक्कं	६५	२१
द्विविधः	द्विविधः सहज सांकेतिकश्च स्थापनाऽपि द्विविधः	६६	१
क्रियायाः—	क्रियायाः सम्यग्-दर्शन ज्ञान चारित्र रहितयाः ऐहिकामुष्मिकार्थ प्रवृत्तयाः	६६	२१
गुनै	ऽनै	६७	१
यास्ते	यास्त्वे	६८	२
सामान्यं	सामान्यं तिर्यक् सामान्यं च तत्रोर्ध्व सामान्यं द्रव्यमेव तिर्यक् सामान्यं	१००	७
सङ्गह	संग्रह	१०३	४
प्पभए	पत्तए	१०६	७
कारणात	कारणता	११०	१
सहना	कहना	११२	११
वंजणेणभयं	बंजणेणभयं	११५	५
नेकम	नेकगम	११७	७
जीव	जीवगम	११६	८
निराचरण	निराचरणाः	११८	२१
प्रवर्त	प्रवर्त	१२३	५
ग्निंद	ग्निंद्र	१२५	१३
शव्दत्वे	शब्दत्वं	१२८	१५
कामादि	कर्मादि	१३१	४
सर्वभ्र	सर्वज्ञ	१३५	५
ह	हैं	१३६	६
आत्मा को मिलता	आत्मप्राप्ति	१३७	१५
मुनि	श्रुत	१४३	१४

प्रशस्ति.

श्री जिन आगम के विषय (१) द्रव्यानुयोग (२) चरण करणानुयोग (३) गणितानुयोग. (४) धर्मकथानुयोग ये चार अनुयोग कहे हैं. जिस में छे द्रव्य और नव तत्त्व उनके गुण पर्याय स्वभाव परिणामन को जानना यह द्रव्यानुयोग है. इस तरह पंचास्तिकाय का स्वरुप कथनरुप है. उस पंचास्तिकाय में एक आत्मानामक अस्तिकाय द्रव्य है वे आत्मा अनन्ते हैं. जिस के मुख्य दो भेद हैं. (१) सिद्ध निष्पन्न सर्व कर्मावर्ण दोष रहित संपूर्ण केवलज्ञान केवलदर्शनादि गुण प्रगटरुप अखंड, अचल, अव्याबाधानंदमयी लोक के अन्तमें विराजमान स्वरुप भोगी हैं उनको सिद्ध जीव कहते हैं. यह सिद्धता आत्मा का मूल धर्म है. उस सिद्धता की इहा करके उनकी यथार्थ सिद्धता को पहिचाने और जो सिद्धावस्था निष्पन्न है उन सिद्धों का बहुमान करना और अपनी भूलसे अशुद्ध चेतनापने परिणत हो कर ज्ञानावर्णादि कर्म बांधे हैं. उनको टाल कर सम्पूर्ण सिद्धता की रुची करनी यह हित शिक्षा है.

दूसरा भेद संसारी जीवों का है. जिसने आत्म प्रदेशों से स्वकर्तापने कर्म पुद्गलों को ग्रहण किया है. तथा कर्म पुद्गलों का लोली भाव हैं. वे मिथ्यात्वगुणस्थानक से यावत् अयोगी केवली गुणस्थानक के चरम समय पर्यंत सब संसारी जीव कहलाते हैं. उनके भी दो भेद हैं. एक अयोगी दूसरा सयोगी. सयोगी के दो भेद, एक सयोगी केवली दूसरा छद्मस्थ. छद्मस्थ के दो भेद एक अमोही दूसरा समोही. समोही के दो भेद एक अनुदित मोही दूसरा उदितमोही. उदितमोही के दो भेद एक सूक्ष्ममोही दूसरा बादरमोही. बादरमोही के दो भेद एक श्रेणी निष्पन्न दूसरा श्रेणी रहित. श्रेणि रहित के दो भेद एक संयमी विरति दूसरा अविरति. अविरति के दो भेद एक सम्यक्त्वि दूसरा मिथ्यात्वी. मिथ्यात्वी के दो भेद एक ग्रन्थि भेदी दूसरा ग्रन्थि अभेदी. ग्रन्थि

अभेदी के दो भेद एक भव्य दूसरा अभव्य, अभव्य जीवोंका दल ऐसा है कि वे श्रुताभ्यास करते हैं. द्रव्य से पांच महाव्रतों को भी अंगीकार करते हैं. परन्तु आत्मधर्म की यथार्थ श्रद्धा विना प्रथम गुणस्थानकमें ही रहते हैं. वे अभव्य जीव सिद्ध पदको प्राप्त नहीं कर सक्के. उनकी संख्या चौथे अनन्त तुल्य है.

दूसरे भव्य हैं वे सिद्धपने के योग्य हैं. उन को कारण योग्य मिलने से पलटन धर्म को प्राप्त होते हैं. ऐसे भव्य जीव अभव्य से अनंतगुणे हैं. उनमें से कइ भव्य जीव सामग्री पा के ग्रंथिभेद कर सम्यक्त्व को प्राप्त करते है. और कितनेक भव्य ऐसे हैं जो सामग्री के अभावसे कभी सम्यक्त्व को प्राप्त नहीं कर सक्के. उक्तंच–विशेषावश्यके, " सामग्गी अभावाओ व्यवहाररासि अप्पवेसाओ। भव्वावि ते अणंता, जे सिद्धसुहं न पावंति ॥ १ ॥ उन भव्य जीवों में योग्यता धर्म का सद्भाव है. इस लिये भव्य कहलाते हैं.

मिथ्यात्व को छोड के शुद्ध पर्याय रुपसे व्यापक हैं वही जीव का स्वधर्म है और जिससे आत्मसत्तागत धर्म प्रगट हो उसको साधन धर्म कहते हैं. जिस के दो भेद (१) वायण–पुच्छणादि–वंदन, नमनादि पडिलेहन–प्रमार्जनादि सब योग प्रवृत्ति है वह द्रव्य से साधन धर्म है. भावधर्म प्रगट करने के लिये यह कारणरुप है. द्रव्य साधन उसी को कहते हैं. जो भाव का कारण हो–" कारण कारया से दव्व " इति आगम वचनात् " और क्षमोपशमादि भावसे प्रगट हुवे जो ज्ञानवीर्यादि गुण उसको पुद्गलानुयायीपने से हटा के शुद्ध गुणी जो अरिहंत सिद्धादिक उन के शुद्ध गुणपने अनुयायी करना अथवा आत्मस्वरूप अनन्तगुणपर्यायरुप उस के अनुयायी करना यह भावसे साधन धर्म है यही आत्मसिद्धि उत्पन्न करने का उपाय है.

जब तक आत्मा का शुद्ध स्वरुप चिदानंदघन साध्य नहीं है और पुद्गल सुखकी आशा से विषगरल अन्योन्यअन्य अनुष्ठान करना यह संसार का हेतु है. इस लिये साध्य सापेक्षपने स्याद्वाद श्रद्धा सहित साधन करना यह

उत्तम मार्ग है. इसी मार्ग की रुची को सम्यक्त्व कहते हैं. वह ग्रन्थीभेद करने से प्राप्त होता है ग्रन्थीभेद करने के लिये तीन करन करते हैं. (१) यथा प्रवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण (३) अनिवृत्तिकरण ये करण सर्व संज्ञी पंचेन्द्रि करते हैं. इसमें पहिला यथा प्रवृत्तिकरण भव्य अभव्य दोनों करते हैं.

यह करण जीव अनंन्तिवार करता है इस का स्वरुप लिखते हैं.

सर्व कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति बांधनेवाले जीव अत्यंत संक्लेश परिणामि होने से यथाप्रवृत्तिकरण नहीं करते. उक्तंच–विशेषावश्यके "उक्कोसठ्ठि न लप्भइं भयणा एएसु पुव्वलद्धाए । सव्वजहनठ्ठिइसुवि, न लप्भजेण पुव्वपडिवन्नो ॥ १ ॥ कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बांधनेवाला जीव सम्यक्त्व को नहीं पा सक्का और जो जीव सात कर्म की जघन्य स्थिति बांधता है वह गुणवान है. इस वास्ते जब एक कोडाकोडी सागरोपम पल्योपम के असंख्यातमें भाग न्यून स्थिति को बांधता हो उस समय यथाप्रवृत्तिकरण करता है. जीवने जो कर्म क्षपणादि शक्ति नहीं प्राप्त की थी वह प्राप्त की उस को यथाप्रवृत्तिकरण कहते हैं. उक्तंच भाष्ये—" येन अनादि संसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तं कर्म क्षपणं क्रियते अनेनिति करण जीव परिणाम एव उच्यते अनादि कालात् कर्मक्षपण प्रवृत्ताध्यवसाय विशेषो यथाप्रवृत्तिकरणामित्यर्थः " जो क्षयोपशमी चेतना वीर्य संसार की असारता जाने संसार दुःखरूप जाने इस कारण शरीर पर से परिग्रह की ममता हटे. उद्वेग, उदासीनता परिणाम से सात कर्मों की स्थिति अनेक कोडाकोडी के दल असंख्याते जो सत्ता में थे वे खपा के किंचित् न्यून एक कोडाकोडी रक्खे ऐसा यथाप्रवृत्तिकरण आत्मा अनन्तिवार प्राप्त करता है. परन्तु ग्रन्थि भेद नहीं कर सक्का इस वास्ते जैसे गिरि नदी के बीचमें आया हुआ पाषाण बहाव में बहता हुवा घिसते घिसते सहज स्वभाव से कोई आकार को प्राप्त हो जाता है इसी तरह जन्म मरणादि दुःख के उद्वेग से अना भोगपने भववैराग से जीव यथाप्रवृत्तिकरण करता है. वही जीव किसी तरह वैराग्य से बिचार करे कि भवभ्रमण यह दुःख है,

संयोग वियोगादि असार है इसमें जो ज्ञानानंदीपना है वही सार है ऐसी गवेषणा करनेवाला जीव यथाप्रवृत्तिकरण कर के अपूर्वकरण करता है. प्रश्न—भव्य को पलटन योग्यता से परन्तु अभव्य किस योग्यता से? उत्तर—अभव्य. तीर्थंकर भक्ति में देवतावों की महिमा या लोक सन्मानादि देखकर पुन्य की वांच्छा से ग्यारह अंग बाह्य पंचमहाव्रतादि को प्राप्त करता है परन्तु उस को सम्यक्त्व नहीं होता. जो पुद्गलाभिलाषी है उस को गुणस्पर्श नहीं होता. उक्तं च महाभाष्ये—अर्हदादिविभूतिशयवती दृष्ट्वा धर्मादेवंविधसत्कारो देवत्व-राज्यादयः प्राप्यन्ते इत्येवं सुमुत्पन्न बुद्धैरभव्यस्यापि देवनरेन्द्रादिपदेहया निर्वाण श्रद्धारहित कष्टानुष्टान किंचिंदंगीकुर्वतो ज्ञान स्वरुपस्य श्रुतसामायिक मात्रलेभेपि सम्यक्त्वादिलाभः श्रुतस्य न भवत्येवेति ॥ इस तरह समझना.

अपूर्वकरण, अनिवृत्ति का अधिकार जैसे आगमसारमें लिखा है वैसे यहां भी समझ लेना. यह तीन करण करके उपशम, क्षयोपशम या क्षायिक स-म्यक्त्व को प्राप्त किया है और आत्म प्रदेशो में वर्तमान जो सम्यक्त्व दर्शन का रोधक ऐसा मिथ्यात्व मोहप्रकृति के विपाकोदय हटाने से सम्यक्त्वदर्शन गुण की प्रवृत्ति होती है इससे यथार्थपने निर्द्धार सहित जानपने प्रवृत्ते उस जीव को द्रव्याणुयोग से तत्वज्ञान प्रगट होता है उसकी रक्षा के लिये जो प्रवृत्ति उसको धर्म कर के श्रद्द हे. वह स्याद्वाद परिणामी पंचास्तिकाय है. उस स्याद्वादज्ञान का स्वरुप नयज्ञानसे होता है. इस लिये नय सहित ज्ञान करना आवश्यक है. नयज्ञान का विषय गहन और अति दुर्लभ है और नय अनन्ती है. उक्तं च—जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ॥ जो पू-र्वापर सापेक्ष न हो उस को कुनय कहते हैं. और सर्व सापेक्ष वर्ते वह सुनय जिस के मुख्य सात भेद है. उनका स्वरुप यत्किंचित् लिखते हैं.

नेगमनय ज्ञानगुण का प्रवर्तन है. इस वास्ते एक द्रव्य में अनन्ते धर्म है वे सब एक समय श्रुतोपयोग में नहीं आसक्के. क्यों कि श्रुतका उपयोग है वह असंख्य समय का है और वस्तु में अनंन्त धर्म की परिणामता एक

समये प्राप्त है इस लिये श्रुतज्ञान सत्य नहीं होता. वास्ते नयज्ञान की जरुरत है. यद्यपि केवली का उपयोग एक समय का है इसलिये उनको जानने के वास्ते नयकी जरुरत नहीं पडती परन्तु बचन से कहने के लिये केवली को नय सहित बोलना पडता है क्योंकि वचन अनुक्रम से बोला जाता है और वस्तु धर्म एक समय अनंत हैं. वास्ते नय सहित बोलते हैं. पूज्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण भी कहते हैं.

जीवादि द्रव्य में जो गुण है वह अनन्त स्वभावी है. गुणकी अस्तिता उसका परिणामन, प्रवृत्ति और उसमें जिस समय कारणता उसी समय कार्यता इत्यादि अनेक परिणति सहित है. उन सब का किसी रीतीसे भिन्न २ पने ज्ञान हो तो वह नयसे होता है वास्ते सम्यक्त्व रुची जीव को नय सहित ज्ञान करना चाहिये. अनेक धर्म सब द्रव्य में रहे हैं. वास्ते पहिले गुरु कृपासे द्रव्यगुण पर्याय की पहिचान करवाते है (यह पीठिका कही आगे मूल सूत्र के अर्थकी व्याख्या करते हैं.)

लेखक.

ग्रन्थकर्ता.

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला।

मु. फलोदी (मारवाड़) से प्रकाशित पुस्तके की माला (१०८)

*१	प्रतिमा छत्तीश	)॥
२	गयवर विलास	।)
*३	दानछत्तीसी	)॥
*४	अनुकम्पाछत्तीसी	)॥
*५	प्रश्नमाला	-)
*६	स्तवनसंग्रह भाग १ ला	=)
७	पैंतीस बोलसंग्रह	
८	द दासाहिबकी पूजा	=)
+९	चर्चा का पब्लिक नोटीश	
*१०	देवगुरुवन्दनमाला	-)
*११	स्तवनसंग्रह भाग दूजा	=)
*१२	लिंगनिर्णय बहुतरी	-)
*१३	स्तवनसंग्रह भाग ३ जा	=)
१४	सिद्धप्रतिमा मुक्तिवली	॥)
+१५	बत्तीससूत्र दर्पण	≡)
*१६	जैन नियमावली	)॥
*१७	चौरासी अशातना	)॥
+१८	डंका पर चोट	भेट
+१९	आगम निर्णय प्रथामांक	=)
*२०	चैत्यवन्दनादि	)॥
*२१	जिनस्तुति	)॥
*२२	सुबोधनियमावली	)॥
*२३	जैनदीक्षा	)॥
*२४	प्रभुपूजा	)॥
+२५	व्याख्याविलास भाग १ ला	=
२६	शीघ्रबोध भाग १ ला	} १॥)
२७	शीघ्रबोध भाग २ जा	
२८	शीघ्रबोध भाग ३ जा	
२९	शीघ्रबोध भाग ४ था	
३०	शीघ्रबोध भाग ५ वा	
+३१	सुखविपाक मूलसूत्र	।)
३२	शीघ्रबोध भाग ६ ठा	।)
+३३	दशवैकालिक मूल सूत्र	=)
३४	शीघ्रबोध भाग ७ वा	।)
३५	मेझरनामो	॥)
३६	तीन निर्नामक लेखो का उत्तर	भेट
३७	ओशियों ज्ञानभंडार का लीस्ट	भेट
३८	शीघ्रबोध भाग ८ वा	।)
३९	शीघ्रबोध भाग ९ वा	।)
४०	नन्दीसूत्र मूलपाठ	।)
*४१	तीर्थयात्रास्तवन	)॥
४२	शीघ्रबोध भाग १० वा	।)
४३	अमे साधु शा माटे थया	भेट
*४४	विनती शतक	,,
४५	द्रव्यानुयोग प्रथम प्रवेशिका	=)
४६	शीघ्रबोध भाग ११ वा	।)
४७	शीघ्रबोध भाग १२ वा	।)
४८	शीघ्रबोध भाग १३ वा	।)
४९	शीघ्रबोध भाग १४ वा	।)
×५०	आनन्दघन चौवीसी	भेट
५१	शीघ्रबोध भाग १५ वां	।)
५२	शीघ्रबोध भाग १६ वां	।)
५३	शीघ्रबोध भाग १७ वां	।)
*५४	कक्काबत्तीसी सार्थ	।)
*५५	व्याख्याविलास भाग २ जा	=)
*५६	व्याख्याविलास भाग ३ जा	=)
*५७	व्याख्याविलास भाग ४ था	=)
*५८	स्वद्रव्य संग्रह भाग १ ला	=)
*५९	राइदेवसि प्रतिक्रमण	=)
*६०	उपकेशगच्छ लघुपटावलि	-)

६१ शीघ्रबोध भाग १८ वां
६२ शीघ्रबोध भाग १९ वां
६३ शीघ्रबोध भाग २० वां
६४ शीघ्रबोध भाग २१ वां
६५ वर्णमाला
६६ शीघ्रबोध भाग २२ वां } ४)
६७ शीघ्रबोध भाग २३ वां ।)
६८ शीघ्रबोध भाग २४ वां ।)
६९ शीघ्रबोध भाग २५ वां ।)
७० तीनचतुर्मास का दिग्दर्शन भेट
+७१ हितशिक्षाप्रश्नोत्तर ,,
७२ विवहाचूलिका० समालोचना ≈)
७३ स्तवनसंग्रह भाग ४ था –)
७४ पुस्तको का सूचीपत्र भेट
७५ महासती सुरसुन्दरी ≡)
+७६ पंचप्रतिक्रमण विधियुक्त भेट
७७ मुनि नाममाला ≈)
७८ छे कर्मग्रन्थ हिन्दी भाषान्तर ।)
७९ दानवीर जगडूशाहा भेट
८० शुभमुहूर्त शुकनावली ≡)
८१ जैन जातिनिर्णय प्रथमांक ≡)
८२ जैन जातिनिर्णिय द्वितीयांक –)
८३ पंचप्रतिक्रमण मूलसूत्रादि ।)
८४ प्राचीन छन्द गुणावलि भाग १ ला ≈)
८५ धर्मवीर शेठ जिनदत्त ≈)
८६ ओसवाल ज्ञाति का इतिहास सचित्र ।)
८७ ओसवाल ज्ञाति समय निर्णय ≡)
८८ मुखवस्त्रिकानि-निरीक्षण –)
८९ निराकरण निरीक्षण भेट
९० दो विद्यार्थियों का संवाद ≈)
९१ प्राचीन छन्द गुणावलि भाग २ जा ≈
९२ तस्करवृति का नमूना –)
९३ धूर्तपंचो की क्रान्तिकारी पूजा)॥
९४ ओसवाल ज्ञातिका पद्यमयइतिहास –)
९५ नयचक्र सार हिन्दी अनुवाद ।≈)
९६ स्त्री स्वतंत्रता और पश्चिममें व्यभिचार लीला. ≈)
९७ स्तवन संग्रह भाग ५ वा
९८ समवसरण प्रकरण भेट
९९ सादडी के तपागच्छ और लुका मत के मतभेद का दिग्दर्शन अर्थात् ३५० वर्षो का इतिहास. ।)
१०० वाली के फेसलें भेट
१०१ प्राचीन छन्द गुणावली भाग ३ जो ≈)
१०२ प्राचीन छन्द गुणावली भाग ४ था ≡)
१०३ जैनजाति महोदय प्र० १ ला
१०४ जैनजाति महोदय प्र० २ जा
१०५ जैनजाति महोदय प्र० ३ जा
१०६ जैनजाति महोदय प्र० ४ था
१०७ जैनजाति महोदय प्र० ५ वा
१०८ जैनजाति महोदय प्र० ६ टा

\+ इस निशानीवाली पुस्तकें खलास हो चूकी है.

* इस निशानीवाली २५ पुस्तकों कपडा को एक जिल्द में बन्धवा के तय्यार करवाई है जिसका नाम '**ज्ञानविलास**' है कि० रु० १॥)

श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल रूणसे प्रकाशित पुस्तकें.

१ भाषण संग्रह भाग १ ।. ≈।

२ भाषण संग्रह भाग २ जा. -)

३ नौपदानुपूर्वि -)

४ नित्यस्मरण पाठमामाला ।)

५ गुणानुकुलक. (लोहावटसे) =)

६ द्रव्यानुयोग द्वि० प्रवेशक (,,) =)

पुस्तके मिलने का पत्ता— श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला.

मु. फलोदी (मारवाड).

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज के सदूउपदेश से स्थापित संस्थाओं की नामावलि.

संख्या	संस्थाओं का नाम	ग्राम	संवत
१	जैन बोर्डिंग	ओशीयोंतीर्थ	१९७२
२	जैन पाठशाला	फलोदी	१९७२
३	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला	,,	१९७२
४	श्री जैन लायब्रेरी	,,	१९७३
५	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला	ओशीयोंतीर्थ	१९७३
६	श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानभण्डार	,,	१९७६
७	श्री कक्कक्रान्ति लायब्रेरी	,,	१९७६
८	श्री जैन नवयुवक प्रेम मण्डल	फलोदी	१९७७
९	श्री रत्नप्रभाकर प्रेम पुस्तकालय	,,	१०७९
१०	श्री जैन नवयुवक मित्रमण्डल	लोहावट	१९८०
११	श्री सुखसागर ज्ञानप्रचार सभा	,,	१९८०
१२	श्री वीर मण्डल	नागोर	१९८१
१३	श्री मारवाड़ तीर्थ प्रबन्धकारणी कमेटी	फलोदीतीर्थ	१९८१
१४	श्री ज्ञानप्रकाश मण्डल	रूण	१९८१

१५	श्री ज्ञानवृद्धि जैन विद्यालय	कुचेरा	१६८१
१६	श्री महावीर मित्र मगडल	,,	१६८१
१७	श्री ज्ञानोदय जैन पाठशाला	खजवाणा	१९८१
१८	श्री जैन मित्रमगडल	,,	१६८१
१६	श्री रत्नोदय ज्ञान पुस्तकालय	पीसांगण	१९८२
२०	श्री जैन पाठशाला	बीलाड़	१६८२
२१	श्री ज्ञानप्रकाश मित्र मगडल	,,	१९८२
२२	श्री जैन मित्रमगडल	पीपाड़	१९८३
२३	श्री ज्ञानोदय जैन लायब्रेरी	,,	१६८३
२४	श्री जैन श्वेताम्बर सभा	,,	१६८३
२५	श्री जैन लायब्रेरी	वीसलपुर	१९८३
२६	श्री जैन श्वेतम्बर मित्रमगडल	खारिया	१९८४
२७	श्री जैन श्वेताम्बर ज्ञान लायब्रेरी	सायरा (मेवाड)	१९८४
२८	श्री जैन कन्याशाळा	सादड़ी	१९८४
२६	श्री जैन कन्याशाळा	लुणावा	१९८५

कितनेक लोग यह कह बैठते है कि हम एकेले क्या कर सके? पर देखिये इन एकेले महात्माने मारवाड़ जैसी भूमि में विहार कर अनेक वादियों की टकर खाते हुए भी कितना काम किया है अगर ऐसे पांच दश साधु कम्मर कस मारवाड़ मेवाड़ मालवा ढूँढाड़ वगैरह प्रदेशो में विहार कर जैन समाज को जागृत करनी चाहे तो शासन का कितना काम कर सके? उन के लिये यह एक उदाहरण है। प्रार्थना यह है कि आप श्रीमान चिरकाल तक विहार कर शासन की सेवा कर हमारे जैसे जीवों पर उपकार करते रहै।

पूर्वोक्त पुस्तके मिलने का पत्ताः—

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला

मु० फलोदी (मारवाड़).

श्री रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला पुष्प नं. [illegible]

श्री रत्नप्रभसूरीश्वर सद्गुरुभ्यो नमः

श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत

नयचक्रसार

हिन्दी अनुवाद सहित.

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्त्तिहराय नाथ ।
तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ॥
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय ।
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधिशोषणाय ॥

॥ मंगलाचरण ॥

प्रणम्य परमब्रह्म, शुद्धानन्दरसास्पदम् ।
वीरं सिद्धार्थ राजेन्द्र–नंदनं लोकनन्दनम् ॥ १ ॥
नत्वा सुधर्मस्वाम्यादि, संघं सद्वाचकान्वयम् ।
स्वगुरून् दीपचन्द्राख्य,–पाठकान् श्रुतपाठकान् ॥ २ ॥
नयचक्रस्य शब्दार्थ कथनं लोकभाषया ।
क्रियते बालबोधार्थं, सम्यग्मार्ग विशुद्धये ॥ ३ ॥

अर्थ—लोगों को आनन्द देनेवाले सिद्धार्थ राजा के पुत्र,

शुद्धआनन्द रस को स्थान और परमब्रह्म ऐसे वीरभगवान को प्रणाम करके, सुधर्मस्वाम्यादि संघ श्रेष्ठ वाचकों के समुदाय को तथा अपने गुरू दीपचन्द्रादि श्रुतपाठकों को नमस्कार करके अल्पज्ञजनों के बोधार्थ और सम्यग् मार्ग की विशुद्धि के लिये नयचक्र के शब्दार्थ को में लोक भाषा में कथन करता हूं.

श्री वर्द्धमानमानम्य, स्वपरानुग्रहाय च ।
क्रियते तत्वबोधार्थं, पदार्थानुगमो मया ॥ १ ॥

अर्थ—श्री महावीरस्वामी को प्रणाम करके अपने और पर जो शिष्यादि उनके उपकारार्थ वस्तुधर्म को जानने के लिये धर्मास्तिकायादि के स्वरूप को में कहता हूं.

विवेचन—संसार में अन्यदर्शनीय लोग द्रव्य को अनेक प्रकार से कहते हैं. जैसे–नैयायिक सोलह पदार्थ, वैशेषिक सात-पदार्थ, वैदान्तिक, सांख्य एक पदार्थ और मीमांसिक पांच पदार्थ कहते हैं. वे सब मिथ्या है. उन लोगोंने पदार्थ के स्वरूप को नहीं पहिचाना. श्री अरिहंत, सर्वज्ञ प्रत्यक्ष ज्ञानीयोंने छे पदार्थ कहे हैं. "एक जीव और पांच अजीव" (इनका स्वरूप आगे चलके बतावेंगे) तथा नौ तत्त्व रूप जो नौ पदार्थ कहे हैं. उसमें एक जीव दूसरा अजीव यह दो पदार्थ मुख्य है. शेष सात तत्त्व केवल जीव अजीव के साधक, बाधक, शुद्ध, अशुद्ध परिणति की अवस्था भेद को पहचानने के लिये किये हैं.

द्रव्याणांच गुणानां च पर्यायाणां च लक्षणं ।
निक्षेप नय संयुक्तं तत्व भेदैरलंकृतम् ॥

तत्र तत्त्व भेदपर्यायै र्व्याख्या तस्य जीवादेर्वस्तुनो भावः स्वरूप तत्वम्

अर्थ—द्रव्य, गुण और पर्यायों के लक्षण को निक्षेप नयकर के युक्त तत्व भेद सहित कहता हूं. तत्रजिनागम के विषय तत्ववस्तुस्वरूप की भेद पर्याय से व्याख्या है. जीवादि वस्तु के मूल धर्म को स्वरूप तत्त्व कहते हैं।

विवेचन—तत्त्व का लक्षण कहते हैं. व्याख्यान करने योग्य जो जीवादि पदार्थ उसके मूल धर्म को स्वरूप तत्त्व कहते हैं. जैसे–सोने का स्वरूप पीला भारी स्निग्धादि है. तथा कार्य आभरणादि है फलतया इससे अनेक भोग वस्तु प्राप्त होती है. इसी तरह जीव का स्वरूप ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि अनन्त गुण और कार्य सब भावों का जानपना इत्यादि अभेदपने रहा हुवा धर्म वही सब वस्तु का स्वरूप तत्त्व है.

येन सर्वत्राविरोधेन यथार्थतया व्याप्य व्यापक
भावेन लक्षते वस्तु स्वरूपं तल्लक्षणं ॥

अर्थ—जिस चिन्हसे विरोधरहित वास्तविकवस्तुस्वरूप व्याप्य व्यापकरूप से जाना जाय उसे लक्षण कहते है.

विवेचन—लक्षण का स्वरूप कहते है–जो गुण स्वजातीय सब द्रव्य में यथार्थ भाव से–अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, असंभवादि दोष रहित व्याप्य, व्यापकरूप से जाना जाय उसको लक्षण कहते हैं. वह दो प्रकार से हैं (१) लिंगबाह्य–आकाररूप (२) वस्तु में

रहा हुवा स्वरूप, उसमें लिंग बाह्य यथा—गाय का लक्षण "सास्नादिसहितपना" यह बाह्याकाररूप लक्षण है, इस बाह्याकार से बोधकरवाना बालबुद्धि वालों के लिये है और वस्तु को वस्तुधर्म से जानना यह स्वरुप लक्षण है. यथा—जिसमें चेतनादि लक्षण हो वह जीव तथा चेतना रहित हो वह अजीव इत्यादि लक्षण से पहिचानना यह स्वरूप लक्षण है. इसी तरह अनेक प्रकार से समझ लेना.

तत्र द्रव्यभेदा यथा जीवा अनन्ताः कार्यभेदेन भावभेदा भवन्ति क्षेत्रकाल भाव भेदानामेक समुदायित्वं द्रव्यत्वम्

अर्थ—द्रव्य से भेद यथा जीव अनन्त है, कार्य के भेद से भाव भेद होता है. क्षेत्र, काल, भावभेदों का जो एक समुदाय उसको द्रव्य कहते हैं.

विवेचन—अब भेदका स्वरूप कहते है.—जो वस्तु कथन की जाय उसके चार भेद है (१) द्रव्य (२) क्षेत्र (३) काल (४) भाव.

तत्र उस में द्रव्य का भेद जैसे—लक्षण से एक सरीखे हैं परन्तु पिंड रूपसे पृथक २ हो उसको द्रव्यभेद कहते है. जैसे सर्व जीव जीवत्वरूप सामान्यता से सरीखे है. परन्तु प्रत्येक जीव स्वगुण, पर्याय से पिंडपने जुदे जुदे हैं, कोई किसी में मिल नहीं सक्ता इस लिये द्रव्य भिन्नता से जीव अनंते है. पुद्गल परमाणु भी जडतापने सरीखे है परन्तु सब परमाणु द्रव्यरूप से जुदे रहे

हैं वे किसी समय न्यूनाधिक नहीं होते अर्थात् कोई भी काल में घटते नहीं. इसी तरह नये बढते भी नहीं.

क्षेत्रांश—क्षेत्र से भेद जो बिस्तीर्ण हो तो पृथक् अर्थात् जुदा क्षेत्र अवगाह के रहे. जैसे—जीवादि द्रव्य के प्रदेश अवगाहना धर्म से पृथक है. परन्तु द्रव्य से पृथक नहीं होते संलग्न रहते हैं. गुणपर्याय सब प्रदेशों में अनन्त है. वे स्वप्रदेश को छोड के अन्य प्रदेश में नहीं जाते. एक पर्याय अवि भाग की और प्रदेश की अवगाहना तुल्य है. वे पर्याय भिन्नपने अनन्त है. और वे अनन्त पर्याय संमिलित होके एक कार्य करे उस कार्य को गुण कहते हैं

काल—एक बस्तु में उत्पाद व्यय रूप पर्याय के परिवर्तन काल को समय कहते है. जितना उत्पाद व्यय तथा अगुरुलघु हानि वृद्धि की परिणमनता का भान है उसको समय कहते है. और इससे दूसरी परिणमनता हुई वह दूसरा समय। इस तरह अनन्त अतीत प्रवृत्ति हुई वह वर्तमान समय की परंपरारूप समझनी। और भविष्य में होने वाली है वह कार्यरूप से योग्यता रूप समझनी अतीत अनागतका कोई ढेर अर्थात् रासि नहीं है. यह पंचास्तिकायके वर्तना रूप जो परिणमन उसके मान को काल कहते है, यह तीसरा काल से भेद कहा.

भाव—जो पर्याय भिन्न २ कार्य करे उन पर्यायो में कार्यभेद से भिन्नता होती है, इस लिये यह चोथा भाव से भेद कहा. अब

द्रव्य का लक्षण कहते है. जो द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव भेद से समुदाई पने रहे उसको द्रव्य कहते है.

तत्रैकस्मिन् द्रव्ये प्रति प्रदेशे स्वस्व एककार्य करण सामर्थ्यरूपा अनन्ता अविभाग रूप पर्यायास्तेषां समुदायो गुणः। भिन्न कार्य करणे सामर्थ्य रूप भिन्नगुणास्य पर्यायाः। एवं गुणा अप्यनन्ताः प्रति गुणं प्रतिप्रदेशं पर्याया अविभाग रूपाः अनन्तास्तुल्याः प्राय इति ते चास्तिरूपाः प्रतिवस्तुन्यनन्ता स्ततोऽनन्तगुणाः सामर्थ्य पर्यायाः

अर्थ—उस एक द्रव्य के प्रतिप्रदेश में स्व स्वकार्यकरण विषयक सामर्थ्यरूप अनन्तपर्याय है उस अविभागरूप पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं. भिन्न कार्य करणे के लिये जो सामर्थ्यरूप पर्याय है वे भिन्नगुण के पर्याय है. इस तरह गुण भी अनन्त है प्रत्येक गुण और प्रत्येक प्रदेश के विषय अविभागरूप पर्याय अनन्ते हैं. और प्रायः तुल्य है. वे पर्याय प्रत्येक वस्तु में अनन्ते अस्तिरूप हैं उस अस्तिरूप पर्याय से सामर्थ्य पर्याय अनन्त गुण है.

विवेचन—अब गुण का लक्षण कहते हैं. यथा—गुणानामाश्रयो द्रव्यमिति—एक द्रव्य के विषय स्वविषयिक कार्य करने का जिसमें सामर्थ्य है उस सामर्थ्यरूप अनन्त अविभाग पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं. जैसे—सो तंतूवों की एक रस्सी बनाई वे सो तंतुवे अविभागरूप से अस्ति पर्याय हैं. और उस रस्सी से

जो बांधनादि अनेक कार्य होते हैं. वह सामर्थ्य पर्याय है. अस्तिरूप पर्याय है वह वस्तु स्वरूप है. और सामर्थ्य पर्याय है वह प्रवर्तनात्मक कार्यरूप है. उस अस्तिरूप पर्याय के समुदाय को गुण कहते हैं. अस्तिरुप पर्याय के अविभाग का वरणन योगस्थान, समयस्थान में है. और भिन्न कार्य करने का जिसमें सामर्थ्य है ऐसे अविभागरूप आत्मप्रदेश में वर्तते हुवे जो पर्याय वे भिन्न गुण के पर्याय समझने जैसे (१ अविभागवीर्य सामर्थ्यरूप पर्याय है उस अनन्त पर्यायो का समुदाय वह वीर्यगुण (२) जानना रूप सामर्थ्य है जिसमें ऐसे जो अविभागरुप पर्याय उस अनन्त पर्याय का समुदाय वह ज्ञानगुण. ऐसे गुण एक द्रव्य में अनन्ते हैं. उस एक गुण के प्रत्येक प्रदेश में अविभागरूप पर्याय अनन्त है. और सब प्रदेशो में सरीखे हैं. तथापि पंचास्तिकाय में एक अगुरुलघु पर्याय का भेद तारतम्य योगवाला है. और पुद्गल परमाणु में काल भेद से अथवा द्रव्य भेद से वर्णादि पर्याय का तारतम्य योग है. वे पर्याय अस्तिरूप है कोई पर्याय द्रव्यान्तर में नहीं जाता और प्रदेशान्तर में भी नहीं जाता. अस्तिपर्याय से सामर्थ्यपर्याय अनन्त गुण है. और वे कार्यरुप है. तथाच–महाभाष्ये–यावन्तो ज्ञेयास्तावन्तैव ज्ञान पर्यायाः ते चास्तिरुपाः प्रतिवस्तुनि अनन्तास्ततोप्यनन्त गुणाः सामर्थ्यपर्यायाः

तत्र द्रव्यलक्षणं—उत्पाद व्यय ध्रुव युक्तं सल्लक्षणं द्रव्यं, एतद् द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिकोभयनयापेक्षया लक्षणं, गुणपर्यायवत् द्रव्यं एतत् पर्यायनयापेक्षया, अथ क्रिया-

कारी द्रव्यं एतल्लक्षणं स्व स्व शक्ति धर्मापेक्षया । धर्मास्तिकाय -अधर्मास्तिकाय-आकाशास्तिकाय-पुद्गलास्तिकाय-जीवास्तिकाय-कालश्चेति.

अर्थ— अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं उत्पाद, व्यय, ध्रुवयुक्त शाश्वतपने हो उसको द्रव्य कहते हैं. यह लक्षण द्रव्यास्ति, पर्यायास्ति दोनो नयों की अपेक्षा से है. तथा गुण, पर्यायसहित द्रव्य यह पर्यायास्ति नय की अपेक्षा से है. स्वक्रिया करनेवाला हो वह द्रव्य. ये लक्षण अपनी २ शक्ति धर्मापेक्षासे जानना. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल इति.

विवेचन—अब द्रव्य का लक्षण कहते हैं. उत्पाद अर्थात् नये पर्याय का उत्पन्न होना, व्यय अर्थात् पूर्व पर्याय का विनाश होना और ध्रुव अर्थात् नित्यपना. यह तीनो परिणमन सदा परिणमें उस को द्रव्य कहते हैं. अर्थात् वे गुण कार्य कारण दोनों रुपसे समकाल ही में परिणमते हैं. कारण विना कार्य नहीं होता और जिससे कार्य न हो उस को कारण भी नहीं समझना. जो उपादान कारण है वही कार्य होता है. कारणता का व्यय और कार्यता का उत्पाद समकाल में होता है. कारणता प्रतिसमय नयी नयी होती है इसी तरह कार्यता भी नयी २ होती है. कारणता का भी उत्पाद, व्यय है और कार्यता का भी उत्पाद व्यय है. तथा गुणपिंडरुपसे और द्रव्याधाररुपसे ध्रुव है. इस परिणति से

प्रणमें वह अस्तिरुप द्रव्य समझना. यह लक्षण द्रव्यास्तिक, पर्यायास्तिक दोनो नय को ग्रहण कर के कहा है. इसमें ध्रुवपना है वह द्रव्यास्तिक नयग्राही है और उत्पाद व्यय है यह पर्यायास्तिक नयग्राही है. यह वाक्य तत्त्वार्थ सूत्र का है. एक और दूसरा लक्षण भी तत्त्वार्थ सूत्र में कहा है. एक द्रव्य में स्वकार्य गुणपने वर्तमान वह गुण और पर्याय जो गुण का कारणभूत तथा द्रव्य का भिन्न २ कार्यपने परिणमन. उन द्रव्यगुण दोनों को स्वाश्रयी परिणमनपने ये दोनो है जिसमें उस को द्रव्य कहते है. अर्थात् गुण तथा पर्याय सहित को द्रव्य कहना. जिस द्रव्य का दो भाग नहो वह द्रव्य का मुख्य लक्षण है बहुत से परमाणुवों के स्कंध को द्रव्य माना है वह उपचार मात्र है परन्तु जिस की परिणति त्रिकाल में भी स्व स्वभाव का त्याग न करे और जो द्रव्य अपनी मूल जाति को न छोडे, जिसका अगुरुलघु षड् गुनहानि वृद्धिरुप चक्र इकट्ठा फिरे वह एक द्रव्य है. और जिसका पृथक-जुदा हो उसको भिन्न द्रव्य कहना. धर्म, अधर्म, आकाश ये एकएक द्रव्य है. और असंख्यात प्रदेशी जीव एक अखंड द्रव्य है. ऐसे जीव सब लोक में अनन्त है वे जीव सिद्ध में बढते हैं. और संसारीपने में न्यून होते हैं. परन्तु सब जीव संख्या में न्यूनाधिक नहीं होते. पुद्गल परमाणु एक आकाश प्रदेश प्रमाण एक द्रव्य है ऐसे परमाणु सब जीवों से तथा सब जीवों के प्रदेशों से भी अनन्त गुणे द्रव्य है. स्कधं पने तथा छूटा परमाणुपने न्यूनाधिक होते हैं. परन्तु पुद्गल परमाणुपने जो संख्या है उस में न्यूनाधिक नहीं होते. यह निश्चयनय से लक्षण कहा.

अब व्यवहार नय से लक्षण कहते है. स्वक्रिया–प्रवृत्ति का कर्ता हो उसको द्रव्य कहते है. जैसे जीव की शुद्ध क्रिया है वह ज्ञानादि गुण की प्रवृत्ति, समस्त ज्ञेय पदार्थ जानने के लिये ज्ञान की प्रवृत्ति वैसे ही सब गुण का कार्य यथा–ज्ञानगुणका कार्य विशेष धर्म का जानना, दर्शनगुण का कार्य समस्त सामान्य भावों का बोध होना, चारित्र गुण का कार्य है स्वरूप रमणता इत्यादि तथा धर्मास्तिकाय का कार्य है गतिगुण प्राप्त हुवे जीव, पुद्गल कों चलन सहकारी होना इसी तरह सब द्रव्यों का भी स्वगुणापेक्षासे कार्य समझ लेना यह लक्षण सब द्रव्यों के जो गुण उनकी स्व कार्यानुयायी प्रवृत्ति को अर्थ क्रिया कहते है.

द्रव्य छे है.—(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय (४) पुद्गलास्तिकाय (५) जीवास्तिकाय (६) काल इनसे अधिक कोई पदार्थ नहीं है. जो नैयायिकादि सोलह पदार्थ मानते है (१) प्रमाण (२) प्रमेय (३) संशय (४) प्रयोजन (५) दृष्टान्त (६) सिद्धान्त (७) अवयव (८) तर्क (९) निर्णय (१०) वाद (११) जल्प (१२) वितंडा (१३) हेत्वाभास (१४) जल्प (१२) जाति और (१६) निग्रह वे मिथ्या है क्यों कि वे प्रमाण को भिन्न पदार्थ कहते है. वह तो ज्ञान है और प्रमेय आत्मा का गुण है. वह गुण आत्म में रहा हुवा है. उसको भिन्न पदार्थ क्यो कहना ? दूसरा जो प्रयोजन सिद्धान्तादिक वह सब जीव द्रव्य की प्रवृत्ति है इस लिये भिन्न पदार्थ नहीं कह सक्के.

वैशेषिक (१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय (७) अभाव यह सात पदार्थ कहते है. परन्तु उसमे जो गुण पदार्थ कहा है वह तो द्रव्य में ही है उसको भिन्न पदार्थ कहना अनुचित है. कर्म द्रव्य का कार्य है. और सामान्य तथा विशेष यह दोनो परिणामन स्वभाव है. समवाय तो कारणता रुप द्रव्य का परिवर्तन है और अभाव असत्य को कहते हैं। असत्य को पदार्थ कहना अघटित है और वे नो पदार्थ भी कहते है. (१) पृथ्वी (२) अप (३) तेज (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिक (८) आत्मा (९) मन। उत्तर–पृथ्वी, अप, वायु, तेज ये आत्मा है, परन्तु कर्म योग शरीर भेद से ये भिन्न है. दिशा आकाश से भिन्न नहीं है और मन आत्मा के संसारीपने उपयोग प्रवर्तन द्वारा होता है इस लिये भिन्न द्रव्य कहना मिथ्या है.

वैदान्तिक, सांख्य एक आत्मा अद्वैतयाने–एक ही पदार्थ मानते है. उनकी भी यह भूल है. क्यों कि जो शरीर है वह रुपी है और पुद्गल द्रव्य का स्कंध है. इस लिये एक पदार्थ कैसे सिद्ध हो सक्ता है. आत्मा और शरीर का आधार आकाश है और वह प्रत्यक्ष सिद्ध है. इस लिये मानना ही पडेगा वास्ते अद्वैतपना भी निषेध हुवा.

बौद्धदर्शन समय २ नवानवा (१) आकाश (२) काल (३) जीव (४) पुद्गल ये चार पदार्थ मानते है. उनसे पूछा

जाथ कि जीव और पुद्गल एक स्थान मे नहीं रहते किन्तु चलनादि भाव को प्राप्त होते है. तो उसकी अपेक्षा कारण १ धर्मास्तिकाय २ अधर्मास्तिकाय ये दो द्रव्य भी मानने चाहिये.

कितनेक संसार स्थिति का कर्ता इश्वर को मानते हैं. वे भी अनभिज्ञ हैं. जो निर्मल रागद्वेष रहित ऐसे परमेश्वर परके सुख दुःख का कर्ता कैसे हो सक्ता है ! कोई परमेश्वर की इच्छा कहते हैं. सो इच्छा तो अधूरे को होती है. परिपूर्ण को नहीं होती और कोई लीला मात्र कहते है. सो लीला तो अजाण या अधूरा या अपना आनन्द अपने पास न हो वह कर्ता है परन्तु जो संपूर्ण चिदानन्दघन है उस को लीला कैसे घट सक्ती है ?

मीमांसादि पांच भूत कहत है. उसमें भी चार भूत तो जीव पुद्गल के संबंध से उत्पन्न हुवे है. और आकाश द्रव्य है वह लोकालोक भिन्न पदार्थ है इस तरह असत्यपने का निराकरण कर के आगम प्रमाण से और कार्यादि के अनुमान से द्रव्य छे मानना युक्तियुक्त है.

तत्र पञ्चानाम् प्रवेशपिंडत्वात् अस्तिकायत्वं । कालस्य प्रवेशाभावात् अस्तिकायता नास्ति, तत्र काल उपचारत एवं द्रव्यं न तु वस्तु वृत्त्या ॥

अर्थ—उन छे द्रव्यों मे पांच सप्रदेशी होने से अस्तिकाय है और काल द्रव्य को प्रदेश के अभाव से अस्तिकाय नहीं कहा है. वह उपचार मात्र से द्रव्य है वस्तुवृत्ति से नहीं.

विवेचन—युक्तिद्वारा छे द्रव्य मानना सिद्ध हुवा इस लिये अब इनकी प्ररुपणा करते हैं. इन छे द्रव्यों में पांच सप्रदेशी है. इन के प्रदेश का पिंडपना होनेसे पांच द्रव्यों को अस्तिकाय पना है. और छट्ठा काल द्रव्य अप्रदेशी है इस लिये अस्तिकाय पना नहीं कहा. काल में जो द्रव्य का व्यवहार होता है वह गौण है. जैसे वस्तुगत धर्मास्तिकायादि द्रव्य है वैसे काल नहीं है. अगर काल को पिंडरूप से द्रव्य मान लिया जाय तो इसका मान कहां है ? जो मनुष्य क्षेत्र में काल द्रव्य का मान है तो बाहिर के क्षेत्र में नवा पुराणादि तथा उत्पाद, व्यय कौन करता है ? अगर जो चौदह राजलोक व्यापी मानते हैं तो असंख्यात प्रदेशी मानना चाहिये और प्रदेश मानने से अस्ति कायपना होता है. अब जो असंख्यात प्रदेश मानते हैं तो वे लोक प्रदेश प्रमाण होवेंगे और असंख्यात काल द्रव्य की प्राप्ति होगी. परन्तु काल द्रव्य को तो अनन्त माना है. इस वास्ते इसको पंचास्तिकायिक वर्तना रुप पर्यायपने आरोप करके द्रव्य मानना चाहिये क्यों की अस्तिकायता नहीं है. और सब में इसकी वर्तना है यह पक्ष भी सत्य है यथा स्थानांगसूत्रे,— " कि भंते अद्धा समयेति वुच्चति ? गोयमा ! जीवा चेव अजीवा चेव ॥ " अर्थात् काल जीव अजीव की वर्तना पर्याय है. उनकी उत्पाद व्यय रुप वर्तना ही काल है. परन्तु इसको अजीव द्रव्यमें गवेषणा करनेका कारण यह है कि जीव वर्तना से अजीव वर्तना अनन्तगुणी है. इस बहुलता के कारण काल कों अजीव द्रव्य माना है यथा—विशेषावश्यक भाष्ये—न पश्यति क्षेत्र कालावसौ

तयोरमूर्त्तत्वात् अवधेश्च मूर्त्ति विषयत्वात् वर्तमान रुपं तु कालं पश्यति द्रव्य पर्यायत्वात्तस्येति ।। तथा बावीस हजारी में भी कहा है— कालस्य वर्तमानादि रुपत्बात् द्रव्योपक्रमः उपचारात् ।। और भगवतीसूत्र के तेरहवें शतक में पुद्गल वर्त्तना की अपेक्षा से काल को रुपी कहा हैं.

अब पंचास्तिकाय का भिन्न २ लक्षण कहते हैं.

तत्र गति परिणातानां जीव पुद्गलानां गत्युपष्टंभहेतु धर्मास्तिकायः स चासंख्यप्रदेश लोकप्रदेश परिमाणः ।

अर्थ—जिनमें गति परिणामी जीव पुद्गलों का जो गत्यालंबन हेतु है उसको धर्मास्तिकाय कहते हैं. वह धर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेशी लोकव्यापी लोकमान है सब लोकके एकएक प्रदेश में धर्मास्तिकाय का एकएक प्रदेश अनन्त संबंध से हैं. ये धर्मादि तीन द्रव्य अचल, अवस्थित और अक्रिय है.

स्थिति परिणातानां जीव पुद्गलानां स्थित्युपष्टंभहेतु, धर्मास्तिकायः स चासंख्येयप्रदेश लोक परिमाणः

अर्थ—जो जीव और पुद्गल स्थितिपने को प्राप्त हुवे हैं. उनकी स्थिति का आलंबन हेतु अधर्मास्तिकाय है वह असंख्यात प्रदेशी लोकके प्रमाण हैं.

सर्व द्रव्याणां आधारभूतः अवगाहक स्वभावानां जीव पुद्गलानां अवगाहोपष्टंभकः आकाशास्तिकायः, सचानन्तप्रदेशः लोकालोकपरिमाणः । तत्र जीवादयो वर्तन्ते स लोकः

असंख्यप्रदेश परिमाणः ततः परमलोकः केवल आकाश प्रदेशव्यूहरूपः स चानन्तप्रदेश परिमाणः

अर्थ—सर्व द्रव्यों का आधारभूत, अवगाहक स्वभावी जीव पुद्गलों को अवगाहन देने में जो आलंबन हेतु वह आकाशास्तिकाय है. वह लोकालोक परिमाण अनन्त प्रदेशी है. जिसमें जीवादि द्रव्यों की वर्तना है वह लोक असंख्य प्रदेश परिमाण वाला है उसके आगे केवल आकाश प्रदेश व्यूह रुप अनन्त प्रदेशी जीवादि पांच द्रव्यों से रहित जो आकाश द्रव्य है उसीको अलोकाकाश कहते है.

कारणमेव तदन्त्यं सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः एक रस वर्णगंधो द्विस्पर्शः कार्यलिंगीच ।। पूरण गलन स्वभाव पुद्गलास्तिकायः स च परमाणुरूपः ते च लोके अनन्ताः, एकरूपाः परमाणवः अनन्ता द्व्यणुका अप्यनन्ताः, त्र्यणुका अप्यनन्ताः, एवं संख्याताणुकस्कंधा अप्यनन्ताः, असंख्याताणुक स्कंधा अप्यनन्ताः, अनन्ताणुकस्कंधा अप्यनन्ताः, एकैकस्मिन् आकाशप्रदेशे एवं सर्व लोकेऽपि ज्ञेयं एवं चत्वारोऽस्तिकायाः अचेतनाः ।।

अर्थ—द्वेणुकादिस्कंधोंका अन्त्यम् अर्थात् मूल कारण ही केवल परमाणु. है वह सूक्ष्म है और नित्य है उसमें एकरस एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्श होते हैं. और वह कार्यलिंगी है पूरण गलन स्वभाव वाला परमाणु है. एक रुपवाले परमाणु

लोक के विषय अनन्त हैं इसी तरह दो अणुवाले स्कंध अनन्त हैं, तीन अणुवाले स्कंध अनन्त हैं, एवं यावत् संख्याते अणुवाले स्कंध अनन्ते हैं. असंख्याते अणुवाले स्कंध अनन्ते हैं. और अनन्ते अणुवाले स्कंध भी अनन्ते हैं. इस तरह एकैक आकाश प्रदेश में तथा सर्व लोक में भी अनन्ते २ समझना. ये चारों अस्तिकाय अचेत–चेतना रहित अर्थात् जड़ है.

विवेचन—अब पुद्गल द्रव्य का स्वरुप लिखते हैं. जो पूरण अर्थात् वर्णादि गुण की वृद्धि और गलन अर्थात् वर्णादि गुण की हानि एसा जिसमें स्वभाव हो उसको पुद्गलास्तिकाय कहते हैं. उसका मूल द्रव्य परमाणु रुप हैं. अब परमाणु का लक्षण बतलाते हैं. द्व्यणुकादि जितने स्कंध हैं उन सब का मूल कारण परमाणु है परन्तु परमाणु का कारण कोई नहीं हैं. न इस को किसीने पैदा किया है और न किसी के मिलावट अर्थात् मिश्रता से उत्पन्न हुवा है. वह परमाणु अत्यन्त सूक्ष्म एक आकाश प्रदेश की अवगाहना के तुल्य है परन्तु एक आकाश प्रदेश की अवगाहना में अनन्ते परमाणु समाये हुवे हैं यद्यपि एक परमाणु में दूसरा कोइ द्रव्य नहीं समा सक्ता. इस लिये परमाणु सब से सूक्ष्म और नित्य है. जितने परमाणु हैं वे सब स्कंधादि अनेकपने परिणमते हैं. परन्तु वे कभी विनाश को प्राप्त नहीं होते. जो एक परमाणु है उस के विषय एक रस, एक वर्ण, एक गंध और दो स्पर्श (सूक्ष्म स्कंध में समुच्चय चार स्पर्श होते हैं. रूक्ष, स्निग्ध, शीत, उष्ण इनमें से दो प्रतिपक्षि छोड के शेष

दो स्पर्श,) हो वह परमाणु द्रव्य समझना. यहां कोइ शंका करे कि परमाणु द्रव्य दृश्य नहीं है उस को कैसे मानना ? उत्तर—जो घट पट शरीरादि कार्य दृश्य है, ग्राह्य है, और रूपी है इस लिये इसके संबंधका कारण परमाणु है वह अति सूक्ष्म है इन्द्रियों-द्वारा अग्राह्य है परन्तु रुपी है. क्योंकि अरुपीसे रुपी कार्य नहीं होता. परमाणु रुपी है इसलिये इसका स्कंध भी रुपी होता है और आकाशप्रदेश अरुपी है तो उसका स्कंध भी अरुपी है. वास्ते परमाणु मानना चाहिये। परमाणुके दो प्रदेशीस्कंध अनन्त हैं. और छूटे परमाणु भी अनन्त हैं. वे स्कंधमें संमिलित होते हैं. और स्कंधमें मिले हुवे परमाणुरुपमें छूटे भी होते हैं. इनकी वर्गणा अठ्ठाईस प्रकारसे हैं. जिसका स्वरुप "कर्म प्रकृति ग्रन्थ" से देख लेना. इस तरह केवल एक परमाणु भी अनन्त हैं. दो मिलके स्कंधपने को प्राप्त हुवे भी अनन्ते है. एवं संख्यात अणुके स्कंध भी अनन्ते हैं. असंख्यात अणुके स्कंध भी अनन्ते हैं और अनन्ते अणुके स्कंध भी अनन्ते हैं. ये जो स्कंध हैं वे एक आकाश प्रदेश को अवगाह करके रहते है और यावत् असंख्याते आकाश प्रदेश भी अवगाह करके रहते हैं. परन्तु एक वर्गणा की अवगाहना अंगुलके असंख्यातवें भाग है इससे जादा नहीं और अनन्त वर्गणा मिलनेसे अंगुल, हाथ, गाउ और योजनादि की अवगाहना भी होती है. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय ये चार द्रव्य अचेतन, अजीव, और ज्ञानरहित है.

चेतना लक्षणो जीवः, चेतना च ज्ञानदर्शनोपयोगी अनन्तपर्याय पारिणामिक कर्तृत्व भोक्तृत्वादि लक्षणो जीवास्तिकायः

अर्थ—चेतनालक्षण है जिसका वह जीव है और ज्ञान-दर्शन की उपयोगीता हो उसको चेतना कहते हैं. पुनः अनन्त पर्याय परिणामी, कर्त्ता, भोक्तादि अनन्त शक्ति का पात्र ऐसा लक्षण हो उसको जीवास्तिकाय कहते हैं.

विवेचन—अब जीव द्रव्य का स्वरुप कहते हैं. चेतना= बोध शक्ति है जिसमें उसको जीव कहते हैं. स्वपरिणमन और परपरिणमन सब को जाने वह जीव तथा सर्व द्रव्य हैं.— वे अनन्त सामान्य स्वभाव और अनन्त विशेष स्वभाव वाले हैं. उसमें सर्व द्रव्य के विशेष स्वभाव के अवबोध को ज्ञान कहते हैं और सामान्य स्वभाव के अवबोध को दर्शन कहते हैं ऐसे ज्ञान दर्शन का उपयोगी और जो अनन्त पर्याय उसका परिणामिक कर्ता, भोक्तादि अनन्त शक्तिका पात्र हैं उसको जीव कहते हैं. उक्तं च–नाणं च दंसणं चेव चरितं च तवो तहा; वीरियं उवओगो अ एवं जीवस्स लक्खणं (उत्तराध्ययन वचनात्)

चेतना लक्षण, ज्ञान, दर्शन चारित्र सुख वीर्यादि अनन्त-गुण का पात्र, स्वस्वरुप भोगी और अनवच्छिन्न जो स्वावस्था उसका भोक्ता, अनन्त स्वगुण जो स्व स्व कार्य शक्ति उसका कर्त्ता, परभाव का अकर्ता, अभोक्ता, स्वक्षेत्रव्यापी, अनन्त, आत्म-सत्ता ग्राहक, व्यापक और आनन्दरुप हो उसको जीव समझना.

पंचास्तिकायानां परत्वापरत्वे नवपुराणादि लिङ्ग व्यक्त-वृत्ति वर्तना रूपपर्यायः कालः, अस्य चाप्रदेशिकत्वेन आस्तिका यात्वाभावः । पञ्चास्तिकायान्तर्भूतपर्यायरूप-तैवास्य। एते पञ्चास्तिकायाः, तत्र धर्माधर्मौ लोकप्रमाणा-संख्यप्रदेशिकौ, लोकप्रमाण प्रदेश एव एकजीवः । एते जीवाअप्यनन्ताः, आकाशोहि अनन्त प्रदेश प्रमाणः, पुद्गल परमाणु स्त्रयं एकोऽप्य अनेक प्रदेश बंध हेतुभूत द्रव्ययुक्त-त्वात् अस्तिकायः, कालस्य उपचारेण भिन्न द्रव्यता ऊक्ता सा च व्यवहार नयापेक्षया आदित्यगति परिच्छेद परि-णामः कालः समयक्षेत्र एव एष व्यवहारकालः समयावलि-कादिरूप इति ॥

अर्थ—पंचास्तिकायों में पूर्वत्व परत्व–पहला पीछे तथा पुद्गल स्कंधकी नव पुरानरूप स्थिति लक्षण वर्तना पर्याय को काल कहते हैं. प्रदेशोंके अभाव होनेसे इसको अस्तिकाय नहीं कहा. यह काल द्रव्य पंचास्तिकाय में अन्तर्भूत पर्यायरूप है. और शेष ये पांच अस्तिकाय हैं–(१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय लोक प्रमाण असंख्य प्रदेशी हैं. (३) लोकाकाशप्रमाण प्रदेशवाला एक जीव है, एसे जीव अनन्त हैं. (४) आकाश अनन्त प्रदेश प्रमाण है. (५) पुद्गलपरमाणु स्वयम् एक होनेपर भी अनेक प्रदेश बन्ध हेतुभूत द्रव्ययोग्यता होनेसे अस्तिकाय कहा है. कालको उपचार मात्र से ही भिन्न द्रव्य कहा है. व्यवहार नयकी अपेक्षा से सूर्यकी गति के परिज्ञान से जो आवलिकादिका मान है उसका व्यवहार केवल मनुष्य क्षेत्रमें ही है.

विवेचन---अब कालका लक्षण कहते हैं. जो पंचास्तिकाय में परत्व, अपरत्व-जैसे पुद्गल द्रव्य में पहला, पिछला रूप व्यवहारका हेतु तथा नवीनता, जीर्णता करने में प्रगट है वृत्ति जिसकी उस वर्तनारुप पर्यायको काल कहते हैं. अप्रदेशी होने से इसको अस्तिकाय नहीं कहा. इसका पंचास्तिकायमें अन्तरभूत पर्यायरुप परिणमन है, तत्त्वार्थ वृत्ति में इसको धर्मास्तिकायादि का पर्याय कहा है.

पांच अस्तिकाय है. (१) धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है असंख्यात प्रदेशी है और लोकाकाश प्रदेश प्रमाण हैं. (२) एवं अधार्मास्तिकाय (३) जीव द्रव्य भी लोक प्रमाण असंख्यात प्रदेशी है परन्तु अपनी अवगाहना पने व्यापक है. वे जीव अनन्त हैं और अकृत, शास्वत, अखंड द्रव्य है. सत् चिदानंदमय है परन्तु परपरिणामिक, पुद्गलग्राही और पुद्गलभोगी होने से प्रति समय नये कर्म बांधता हुवा संसारी हो गया. वही जिस समय स्वरूप ग्राही, स्वरूप भोगी होगा उस समय सब कर्मोंसे रहित होकर परमज्ञानमयी, परम दर्शनमयी, परमानन्दमयी, सिद्ध, बुद्ध, अनाहारी, अशरीरी, अयोगी, अलेसी, एकान्तिक, निःप्रयासी, अविनाशी, स्वरुप सुखका भोगी शुद्ध सिद्ध होगा इस वास्ते हे चेतन !!! यह परभाव, अभोग्य, सब जगतकी उच्छिष्ट=एंठ तेरे त्याज्य है. तूं स्वभावभोगीताका रसिक होकर स्व स्वरुप प्रकाश और अपने आनन्द को प्रगट करने के लिये निर्मलता को प्राप्त कर.

(४) आकाश लोकालोक प्रमाण एक द्रव्य है. अनन्त

प्रदेशी है. (५) पुद्गल परमाणुरूप है वे परमाणु अनन्ते हैं इस वास्ते पुद्गल द्रव्य अनन्त हैं. प्रदेशके संबंध बिना परमाणु द्रव्यको अस्तिकाय क्यों कहा ? उत्तर—परमाणु तो एक प्रदेशी है. परन्तु अनन्त परमाणुवों से मिलनेकी सत्तायुक्त योग्यताके कारण पुद्गल द्रव्यको अस्तिकाय कहा है. और काल द्रव्यको केवल उपचार स भिन्न द्रव्य कहा है। व्यवहारनयकी अपेक्षासे सूर्यकी गति परिज्ञान जो समय आवलिकादि का मान है उसका व्यवहार मनुष्य क्षेत्र में है. और मनुष्यक्षेत्रसे बाहिर जो जीव हैं. उनके आयुष्य का मान सर्वज्ञोंने इसी मनुष्य क्षेत्रके परिमाणसे कहा है. इसलिये काल पिंडरुपसे भिन्न द्रव्य सिद्ध नहीं होता. किन्तु उपचार से ही सिद्ध है. जो प्रत्येक द्रव्यमें अनेक पर्याय है उसमें किसी भी पर्यायको द्रव्यरूप नहीं कहा. तो एक वर्तना पर्यायमें द्रव्यारोप किस वास्ते किया ? उत्तर—वर्तना परिणति सब पर्यायको सहकारी है. और सब द्रव्यकों सहकारी है इसलिये यह मुख्यपर्याय है. वास्ते इस वर्तना पर्यायमें द्रव्यारोप किया है. और अनादि कालसे इसी तरह की व्याख्या है.

एते पंचास्तिकायाः सामान्य विशेष धर्ममया एव तत्र सामान्यतः स्वभाव लक्षणं द्रव्यव्याप्यगुणपर्याय व्यापकत्वेन परिणामिक लक्षणं स्वभावः, तत्र एकं नित्यं निरवयवं अक्रियं सर्वगतं च, सामान्यं। नित्यानित्य निरवयव सावयवः, सक्रियताहेतुः देश गतः सर्वगतं च विशेष पदार्थगुण प्रवृत्तिकारणं विशेषः। न सामान्यं विशेष रहितं नविशेषः सामान्य रहितः ॥

अर्थ—यह पंचास्तिकाय सामान्य विशेष धर्ममय है. उस में सामान्य स्वभावका लक्षण कहते हैं. द्रव्यमें व्याप्य हो और गुणपर्यायमें व्यापकरुपसे सदा परिणत होता हो उसको सामान्य-स्वभाव कहते हैं. वह एक है, नित्य अर्थात् अविनाशी है, निरअव-यव है, अक्रिय और सर्वगत है. अब विशेषस्वभाव कहते हैं. नित्यानित्य, निरअवयव सा अवयव, सक्रियता हेतु और देशगत सर्वगत हो उसको विशेषस्वभाव कहते हैं. वह जानने योग्य विशेष पदार्थ के गुणोंकी जो प्रवृत्ति उसका कारण है. परन्तु सामान्य विशेषसे रहित नहीं है और न विशेष सामान्य से रहित है.

विवेचन—अब सामान्य और विशेषस्वभाव का लक्षण कहते हैं. जो पंचास्तिकाय है. वह सामान्य और विशेष धर्मी है. सामान्य स्वभाव का लक्षण विशेषावश्यक में इस तरह कहा हैं जो द्रव्य में व्याप्य हो तथा गुण पर्याय में व्यापक रुप से सदा परि णमता हो उसको सामान्य स्वभाव कहते हैं. सामान्य स्वभाव होता है वह एक नित्य अर्थात् अविनाशी, निरवयव विभावरुप अवयव से रहित, और सर्वगत अर्थात् सर्वमें व्यापक होता हैं. जैसे-जीवादि द्रव्य में जो एकत्व है वह पिंडरुप से है वह पिंड-पना सब द्रव्य में है. सब गुण, पर्याय स्वस्व रुपसे अनेक है. परन्तु वे समुदाय पिंडको छोड कर अलग नहीं होते वह सामान्य स्वभाव उस सामान्य स्वभाव के दो भेद हैं. (१) अस्तितादि जो सर्व पदार्थ में है उसको महासामान्य कहते हैं. इसकी प्रतीति श्रुतज्ञान से होती है प्रत्यक्ष अवधिदर्शन, केवलदर्शनवाले देख

सक्ते हैं तथा (२) वृक्ष, आम्र, निम्ब, जंबू प्रमुख अनेक हैं. परन्तु वृक्षत्व सबमें है इसको अवान्तर सामान्य कहते हैं. यह चक्षु दर्शन तथा अचक्षु दर्शन से ग्राह्य हैं. और अस्तित्व, वस्तुत्वादि सामान्यस्वभाव अवधि दर्शन तथा केवलदर्शन से ग्राह्य है. विशेष धर्म ज्ञानगुण से ही ग्राह्य होता है. अब विशेष धर्म का लक्षण कहते हैं. जैसे—किसी अपेक्षा से निय एवं अनित्य, किसी रीतिसे अवयव सहित और अवयव रहित (अविभाग पर्याय से सावयव, सामर्थ पर्याय से निरवयव) और सक्रिय हेतु देशगत जो गुण है वह गुणान्तर में व्यापक नहीं होता और जो गुण समस्त द्रव्य में व्यापक हो उसको सर्वगत कहते हैं. ऐसा जो धर्म वे सव विशेष स्वभाव है. इस तरह विशेष जानने योग्य पदार्थ के गुण की प्रवृत्ति का कारण विशेष स्वभाव है. और जो कार्य करे उस गुणको भी विशेष धर्म समझना परन्तु विशेष सामान्य से रहित नहीं है. और न सामान्य विशेषसे रहित है।

ते मूल सामान्यस्वभावाः षट्। ते चामी (१) अस्तित्वं, (२) वस्तुत्वं, (३) द्रव्यत्वं, (४) प्रमेयत्वं, (५) सत्त्वं, (६) अगुरुलघुत्वं। तत्र १ नित्यत्वादिनां उत्तर सामान्यानां परिणामिकत्वादिनां निःशेषस्वभावानामाधारभूत धर्मत्वमस्तित्वं (२) गुणपर्यायाधारत्वं वस्तुत्वं (३) अर्थक्रियाकारित्वं, द्रव्यत्वं अथवा उत्पादव्ययोर्मध्ये उत्पादपर्यायाणां जनकत्व प्रसन्नस्य आविर्भाव लक्षणव्ययीभूत पर्यायाणां तिरोभाव्यभाव रूपस्याः

(रूपायाः) । शक्तेराधारत्वं द्रव्यत्वं (४) स्वपर व्यवसायिज्ञानं प्रमाणं, प्रमीयते अनेनेति प्रमाणं तेन प्रमाणेन प्रमातुं योग्यं प्रमेयं ज्ञानेन ज्ञायते तद्योग्यंतात्वं प्रमेयत्वं (५) उत्पाद व्ययध्रुवयुक्तं सत्त्वं (६) षड्गुण हानि वृद्धि स्वभावा अगुरूलघुपर्यायास्तदाधारत्वं अगुरुलघुत्वं एते-षट्स्वभावाः सर्वे द्रव्येषु परिणमंति तेन सामान्य स्वभावाः

अर्थः—उस सामान्य स्वभाव के मुख्य छे भेद हैं. और वे ये हैं. (१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व (३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) सत्त्व (६) अगुरुलघुत्व. तत्र (१) नित्यत्वादि उत्तर सामान्य स्वभावों के, परिणामिकत्वादि विशेष स्वभावोंके आधारभूत धर्मको अस्तिस्वभाव कहते हैं. (२) गुणपर्याय के आधारभूत पदार्थको वस्तुस्वभाव कहते है. (३) अर्थक्रियाके आधार को द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं. अथवा–उत्पाद, व्यय में उत्पाद पर्यायों का प्रसव–आविर्भाव लक्षण जो शक्ति तथा व्ययीभूत पर्यायोंकी तिरोभाव–अभावरूप शक्ति उसके आधारको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं. (४) स्वपर ग्राहक ज्ञानवही प्रमाण है, जिससे प्रमाणित किया जाय वही प्रमाण शब्दका वाच्य हैं ज्ञानसे अवबोध करनेवाली शक्ति को प्रमेयत्व स्वभाव कहते हैं (५) उत्पादव्यय ध्रुवयुक्त हो उसको सत्त्व कहते हैं (६) षड्गुण हानि वृद्धिरुप अगुरूलघु पर्याय है उसके आधारत्व को अगुरूलघु स्वभाव कहते हैं. ये छे स्वभाव सब द्रव्यों में परिणत होते हैं. इसवास्ते सामान्य स्वभाव है.

विवेचन—उस सामान्य स्वभाव के मुख्य छे भेद हैं. वे सवद्रव्यों में व्यापकपने हैं. (१) अस्तित्व (२) वस्तुत्व(३) द्रव्यत्व (४) प्रमेयत्व (५) सत्त्व (६) अगुरूलघुत्व. ये परिणामिक रुपसे परिणत है. परन्तु किसी की सहायतासे नहीं है. (१) सब द्रव्यों में उत्तर सामान्य स्वभाव नित्य अनित्यादि. तथा–विशेष स्वभाव परिणामिकादिके आधारभूत धर्म को अस्तिस्वभाव कहते हैं. (२) गुणपर्याय के आधारभूत पदार्थ को वस्तु स्वभाव कहते हैं. (३) अर्थ जो द्रव्यकी क्रिया. जैसे–धर्मास्तिकाय की चलन सहायक क्रिया, अधर्मास्तिकाय की स्थिर सहायक क्रिया, आकाशद्रव्य की अवगाहनरुप क्रिया, जीवकी उपयोग लक्षण क्रिया और पुद्गलों की मिलन विखरनरूप क्रिया को प्राप्त करनेका जो धर्म अर्थात् पर्याय की प्रवृत्ति को अर्थ क्रिया कहते हैं. उस अर्थ क्रिया के आधार धर्मको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं.

प्रकारान्तर लक्षण कहते हैं. उत्पादव्यय की प्रसव शक्ति अर्थात् आविर्भावशक्ति तथा व्ययीभूत पर्याय की तिरोभाव–अभावरुप जो शक्ति उसका जो आधारभूत धर्म उसको द्रव्यत्व स्वभाव कहते हैं.

(४) स्व आत्मा और पर अर्थात् पुद्गलादि अन्य द्रव्यों को यथार्थपने जाने उसको ज्ञान कहते हैं. वह ज्ञान पांच प्रकारका हैं. उस ज्ञानके उपयोग में आनेवाली शक्ति को प्रमेयत्व कहते हैं वह प्रमेयत्व सब द्रव्यों का मुख्य धर्म हैं. प्रमाणसे प्राप्त हुई जो वस्तु उसको प्रमेय कहते हैं. गुणपर्याय सब प्रमेय है.

आत्माके ज्ञानगुण में प्रमाणपना और प्रमेयपना दोनों धर्म है. वह अपने प्रमाण का आप ही कर्ता है.

दर्शनगुणका प्रमाण ज्ञानगुण करता है क्यों कि दर्शनगुण सामान्य है. जो सावयव होता है वह विशेष ही होता है और विशेष होता है वह ज्ञानसे जाना जाता है. दर्शन है वह सामान्य धर्मग्राही है. उसको भी प्रमाण कहते हैं. परन्तु प्रमाण के जहां भेद किये हैं. वहां ज्ञान को ही ग्रहण किया है इसका कारण यह है कि दर्शन उपयोग व्यक्त–प्रगट नहीं है. इस वास्ते प्रमाण में गवेषणा नहीं की. प्रमाण के मुख्य दो भेद हैं. (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष " स्पष्टं प्रत्यक्षं परोक्षमन्यत् " इति स्याद्वाद रत्नाकर वाक्यात्. (५) उत्पाद, व्यय, ध्रुवत्व ये तीनों परिणाम प्रति समय प्रत्येक वस्तु में परिणमें उसको सत् कहते हैं, उस सत् भावको सतत्व स्वभाव कहते हैं (६) अनन्तभाग हानि, असंख्यातभाग हानि २, संख्यातभाग हानि ३, संख्यातगुणहानि ४, असंख्यातगुण हानि ५, अनन्तगुणहानि ६ यह छे प्रकार की हानि तथा–अनन्तभाग वृद्धि १, असंख्यातभागवृद्धि २, संख्यात भागवृद्धि ३, संख्यातगुणवृद्धि ४, असंख्यातगुणवृद्धि ५, अनंतगुणवृद्धि इस तरह छे प्रकार की हानि और छे प्रकारकी वृद्धि यह अगुरुलघु पर्याय की है वह सब द्रव्यों के प्रत्येक प्रदेश में परिणमती है. प्रति समय प्रति प्रदेश में पूर्वोक्त प्रकारसे न्यूनाधिक हुवा करती हैं. इसतरह बारह प्रकारकी परिणमन शक्ति को अगुरुलघुत्व स्वभाव कहते हैं. तत्त्वार्थ टीका के पांचवें अध्ययनमें. अलोकाकाश के अधिकार में.

कहा है. इस तरह ये छ स्वभाव सब द्रव्यों में परिणमते हैं. यह द्रव्यका मुख्य स्वभाव है. प्रदेश का भिन्नपना और द्रव्यका भिन्नपना यह अगुरुलघु के भेदसे होता है इस लिये ये छे सामान्य स्वभाव है, यह द्रव्यास्तिक धर्म है और इसका जो परिणमन है वह पर्यायास्तिक धर्म है किसीका कहना है पर्यायका पिंड है वह द्रव्य है परन्तु द्रव्यपना भिन्न नहीं है. जैसे—धुरी, चक्र, डाड़ी जुहा प्रमुख समुदायको गाड़ी कहते है वह गाड़ी उन अवयवों से भिन्न नहीं है इसी तरह ज्ञानादि गुणसे आत्मा भिन्न नहीं है ? उत्तर—जो ज्ञानादि गुणमें समुदाय रुपसे स्थित हो. द्रव्यमें संमिलित न हो उसको पर्याय कहते हैं. और अर्थ क्रियात्मक समुदाय रुप वस्तुको द्रव्य कहते है. अर्थात् द्रव्यास्तिक पर्यायास्तिक दोनों मिलनेसे द्रव्य कहलाता है. उक्तंच—" संमतो दव्वा पज्जवरहिआ न पज्जवादव्वओवि उत्पत्ति ए । इति सामान्य स्वभावाः

तत्र अस्तित्वं उत्तर सामान्य स्वभावगम्यं ते चोत्तर सामान्य स्वभावा अनन्ता अपि वक्तव्येन त्रयोदश । (१) अस्तिस्वभावः (२) नास्ति स्वभावः (३) नित्यस्वभावः (४) अनित्यस्वभावः (५) एकस्वभावः (६) अनेकस्वभावः (७) भेदस्वभावः (८) अभेदस्वभावः (९) भव्यस्वभावः (१०) अभव्यस्वभावः (११) वक्तव्यस्वभावः (१२) अवक्तव्यस्वभावः (१३) परमस्वभावः इत्येवं रुपं वस्तु सामान्यानन्तमयम् ।।

अर्थ—वह अस्तित्व उत्तरसामान्य स्वभाव गम्य है. और

वे उत्तर सामान्य स्वभाव अनन्त है. तथापि अनेकांत जयपताकादि ग्रन्थोंमें तेरह कहे हैं. उनके नाम मूल पाठमें सुगम है इसलिये यहां नहीं लिखते और इनकी विशेष व्याख्या भी आगे लिखेंगे. इस तरह वस्तु अनन्त सामान्य स्वभावमयी है.

स्वद्रव्यादिचतुष्टयेन व्याप्यव्यापकादिसम्बन्धस्थितानां स्वपरिणामात् परिणामान्तरागमनहेतुः वस्तुनः सद्रूपता परिणतिः अस्तिस्वभावः

अर्थ—स्वद्रव्यादि चारधर्मोंके साथ व्याप्य व्यापकादि संबंधसे स्थित है तथा स्वपरिणामसे परपरिणाममें नहीं जाता ऐसी जो वस्तुकी सद्रूपता परिणति उसको अस्तिस्वभाव कहते हैं.

विवेचन—अब यथाक्रमसे प्रथम अस्ति स्वभावका लक्षण कहते है. स्वद्रव्यादि चारधर्मोंका जिसमें व्यापकत्व है. वे चार धर्म (१) द्रव्य–जो गुणपर्यायके समुदायका आधार हो (२) क्षेत्र- जो प्रदेश सर्वगुणपर्याय की अवस्थाका अवगाह स्थान (३) काल- जो उत्पाद व्यय ध्रुव परिणामी (४) भाव–जो सर्व गुण पर्यायका कार्य धर्म. जैसे–(१) जीवका स्वद्रव्य, गुणका समुदाय है उस गुण पर्यायका जो उत्पादक हो वही स्वद्रव्य है (२) जीव के असंख्याते प्रदेश हैं. वे स्वक्षेत्र पर्याय हैं. जैसे देखनादि गुणके पर्यायका जो क्षेत्र वह स्व क्षेत्र है (३) पर्यायमें कारण कार्यादिका उत्पाद व्यय वही स्वकाल है (४) अतीत अनागत वर्तमानका परिणमन वह स्वभाव है और वही कार्यादि धर्म है. जैसे–ज्ञानगुणका पर्याय

बोधत्व, वेत्तापन, परिच्छेदकत्त्व, विवेचकत्व इत्यादि स्वभाव अस्ति-रूप है इसवास्ते इसको अस्ति स्वभाव कहते है. सर्व द्रव्य स्वधर्म, चतुष्टयेन अस्तिस्वभावमय है. स्वधर्मको छोडकर अन्य धर्म में परिणमन नहीं होता. यह अस्ति स्वभाव सब द्रव्यों में अपने २ गुण पर्यायका समझना. वह सद्रूपताकी परिणति सबद्रव्यों में स्वधर्मसे ही परिणमती है जैसे– जीव है वह अजीव रुपसे, एक जीव है वह दूसरे जीव रूपसे और एक गुण है वह अन्य गुणरुपसे परिणत नहीं होता तथा ज्ञानगुणमें दर्शनादि गुणकी नास्तिता है और ज्ञानगुणकी अस्तितता है. तथा एकगुणके पर्याय अनन्त हैं. वे सब पर्याय धर्मत्व रुपसे सरीखे हैं. परन्तु एक पर्यायका धर्म दूसरे पर्याय में नहीं हैं और दूसरे पर्यायका धर्म पहिले पर्याय में नहीं है. सब अपने २ धर्म में अस्ति हैं. इस तरह अस्तिनास्तिका ज्ञान सब जगह कर लेना. इत्यास्तिस्वभावः

अन्यजातीयद्रव्यादिनां स्वीयद्रव्यादिचतुष्टयतया व्यवस्थितानां विवक्षिते परद्रव्यादिके सर्वदैवा भावाविच्छिन्नानां अन्यधर्माणां व्यावृत्तिरूपो भावः नास्तिस्वभावः यथा जीवे स्वीयाः ज्ञानदर्शनादयो भावाः अस्तित्वे, परद्रव्ये स्थिताः अचेतनादयो भावानास्तित्वे साच नास्तितता द्रव्ये अस्तित्वेन वर्तते, घटे घट धर्माणां अस्तित्वं पटादि सर्वपर द्रव्य वृत्ति धर्माणां नास्ति त्वं एवं सर्वत्रज्ञेयम् ।

अर्थ––विजातिय जो द्रव्यगुण पर्याय हैं. वे स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र स्वकाल, स्वभाव चारों अपने द्रव्यगुणपर्यायमें अवस्थित है.

विवक्षित द्रव्यादिमें उस पर द्रव्यादिका सर्वदा अभाव है इस अभावको नास्ति स्वभाव कहते हैं. जैसे—जीवमें अपने ज्ञानदर्शनादि भावों की अस्तिता है और पर द्रव्यादिमें रहे हुवे अचेतनत्वादि भावोंकी नास्तिता है. परन्तु वह नास्तिता उस द्रव्यमें अस्ति रुपसे वर्तती है जैसे--घरमें घटत्वादि धर्मका अस्तित्व है. परन्तु पटत्वादि परधर्मोंकी नास्तिता है. इस तरह सब जगह समझ लेना.

विवेचन—पूर्वोक्त अस्तिताभावको नास्ति स्वभाव कहते हैं. श्रीभगवतीसूत्र में कहा है—" हे गोतम ? अत्थितं अत्थिते परिणमइ नत्थितं नत्थिते परिणमइ " तथा ठाणांगसूत्रमें—" १ सियअत्थि २ सियनत्थि ३ सियअत्थिनत्थि ४ सियअवत्तव्वं " यह चोभंगी कही है और विशेषावश्यक सूत्रमें कहा है कि जो वस्तुका अस्तित्व नास्तित्व जाने वह सम्यगज्ञानी और जो न जाने या अयथार्थ जाने वह मिथ्यात्वी. उक्तं च— सदसद् विशेषणाओ भवहेउजहच्छिओवलंभाओनाणफलाभावाओ मिच्छादिठिसअन्नाणं ॥ १ ॥ इस गाथाकी टीकामें—स्याद्वादोपलक्षित वस्तु स्याद्वादश्च सप्तभंगी परिणामः एकैकस्मिन् द्रव्येगुणेपर्यायेच सप्तसप्तभंगा भवन्त्येव अतः अनन्तपर्यायपरिणते वस्तुनिअनन्तः सप्तभंगा भवन्ति.इति रत्नाकरावतारिकायां वे सातो भांगे द्रव्य, गुण, पर्यायों में स्वरूप भेदसे होते हैं. इन सात भांगों के परिणामको स्याद्वाद कहते हैं.

॥ सप्त भंगीमाह ॥

तथाहि स्वपर्यायैः परपर्यायैरुभयपर्यायैः सद्भावेनासद्भावेनोभवेन वार्पितो, विशेषतः कुंभः अकुंभः कुंभाकुंभो वा

अयक्तव्योभयरूपादिभेदो भवति सप्तभंगी प्रतिपाद्यते इत्यर्थः ओष्ठग्रीवाकपोलकुक्षिवुध्नादिभिः स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः विशेषतः कुंभ कुंभो भगयते सन् घट इति प्रथमभंगो भवति एवं जीवः स्वपर्यायैः ज्ञानादिभिः अर्पितः सन् जीवः

अर्थ–जैसे–स्वपर्याय से सद्भाव, पर पर्याय से असद्भाव, उभय पर्याय से सद्‌असद्भाव इस रूपको स्याद्‌पदपूर्वक स्थापना करने से कुंभ, अकुंभ, कुंभाकुंभ, अवक्तव्य, कुंभ अवक्तव्य, अकुंभअवक्तव्य, कुंभाकुंभ अवक्तव्य इस तरह सप्तभंगी होती है. प्रथम भंग लक्षणं–जैसे–ओष्ठग्रीवादि स्वपर्याय से अस्तित्वेन अर्पित जो कुंभ है वह अस्तिकुंभ. इसी तरह ज्ञानादि स्वपर्याय सहित को स्यात् अस्ति जीव कहे यह प्रथम भंग.

विवेचन—यह सप्तभंगी स्वद्रव्यकी अपेक्षा से है परकी अपेक्षा से नहीं. जैसे–स्वधर्म विषयी परिणमन यह अस्ति धर्म है और पर धर्म का जो असद्भाव यह नास्ति धर्म है. उसको स्यात् पदपूर्वक प्ररुपणा करनेसे सप्तभंगी होती है. (१) स्यात् अस्ति घटः (२) स्यात् नास्ति घटः (३) स्यात् अवक्तव्य घटः (४) स्यात् अस्ति नास्ति घटः (५) स्यात् अस्ति अवक्तव्य घटः (६) स्यात् नास्ति अवक्तव्य घटः (७) स्यात् अस्तिनास्ति अवक्तव्य घटः इन सात भागों में प्रथम के तीन भंग सकलादेशी कहलाते हैं और शेष चार भांगे विकलादेशी हैं. अब प्रत्येक भंगको दृष्टांतद्वारा समझाते है. यथा–ग्रीवा कपोल कुक्षि आदि स्वपर्यायों से घट है

उस में स्वपर्यायकी अस्तिता अर्पण करने से वह घट घट धर्म से अस्ति है परन्तु नास्ति धर्मकी अस्ति सापेक्षता के लिये स्यात् पद पूर्वकत्व कहना इस लिये स्यात् अस्ति घटः यह प्रथम भंग इसी तरह जीवके ज्ञानादि गुण पर्याय नित्यत्वादि स्वभावमयी होने से स्यात् अस्ति जीवः एवं " सर्वत्र भावनीयम् " यद्यपि जीव और अजीव द्रव्यकी नित्यता सरीखी भासमान होती है. परन्तु वे दोनो एक नहीं है और जीव सब एकजातीय द्रव्य है. परन्तु एक जीव में जैसा ज्ञानादि गुण है वैसा दूसरे में नहीं है. सब द्रव्यत्व धर्म से अस्ति है, एवं स्यात् अस्ति जीवः इति प्रथम भंगः।

तथा पटादिगतैस्त्वक्त्राणादिभिः परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अविशेषतः अकुंभो भवति सर्वस्यापि घटस्य परपर्यायै रसत्व विवक्षायामसन् घटः एवं जीवोऽपि मूर्त्तत्वादि पर्यायैः असन् जीवः इति द्वितियो भङ्गः।

अर्थ--त्वक् त्राणादि जो पटकी पर्याय है उस परपर्याय की अपेक्षा से घट असत् है-अकुंभ है. जैसे-परपर्यायकी अपेक्षा से घट असत् है वैसे ही जीव भी मूर्त्तत्वादि पर्यायकी अपेक्षा से असत् है इति स्यात् नास्ति जीवः। यह द्वितीय भंग।

विवेचन--पट में स्थित जो त्वक्=चर्म, त्राणादि=रक्षणादि पर्याय हैं वे घट में नहीं है. किन्तु पट में है. घट में इन पर्यायों की नास्ति है अर्थात् घट में उन पर्यायों का असद्भाव है इस लिये परपर्यायकी अपेक्षा से घट नास्ति है. इसी तरह जीव में भी

मूर्तीत्व, अचेतनत्वादि पर्यायों की नास्ति है. इस लिये जीव भी परपर्याय से नास्ति है. क्यों कि परपर्यायकी नास्तिता परिणमन द्रव्य में है. यह स्यात् नास्ति नामक दूसरा भंग कहा.

तथा सर्वोघटः स्वपरोभयपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सत्वासत्वाभ्यामर्पितो युगपद्वक्तुमिष्टोऽवक्तव्यो भवति स्वपरपर्यायसत्वासत्वाभ्यां एकैकेनाप्यसांकेतिकेन शब्देन सर्वस्यापि तस्य वक्तुमशक्यत्वादिति, एवं जीवस्यापि सत्वासत्वाभ्यांमेकसमयेन वक्तुमशक्यत्वात् स्यादवक्तव्यो जीवः इति तृतीयो भङ्गः । एते त्रयः शकलादेशाः सकलं जीवादिकं वस्तुग्रहणपरत्वात् ।

अर्थ—घटादि सब वस्तु की सद्भाव रुप स्वपर्याय से अस्तिता है और परपर्याय से नास्तिता है. अतः स्वपर्याय की अस्तिता और परपर्याय की नास्तिता ये दोनो धर्म समकालिक है परन्तु एक समय में कहे नहीं जाते. क्योंकि इन दोनों धर्मों के उच्चारार्थ कोइ एसा सांकेतिक शब्द नहीं कि जो एक समय में कहने के लिये समर्थ हो. इस लिये वस्तु स्वभाव के दोनों धर्मों का ज्ञान कराने के लिये स्यात् अवक्तव्य ऐसा वचन कहा. किसी को ऐसा बोध न होजाय की वचन से सर्वथा अगोचर है. इस दोष को निवारण करने के लिये स्यात् शब्द का प्रयोग किया. इति स्यात् अवक्तव्य घटः इसी तरह जीवका भी अस्ति नास्ति धर्म है वह एक समय नहीं कहा जाता इस लिये स्यात् अवक्तव्य जीवः ये

तीनो भंग सकलादेशी है. सर्व वस्तू को संम्पूर्ण रुप से ग्रहण करता है.

अथ चत्वारो विकलादेशाः तत्रा एकस्मिन् देशे स्वपर्याय सत्वेन अन्यत्र तु परपर्यायासत्वेन संश्च असंश्च भवति घटोऽघटश्च एवं जीवोऽपि स्वपर्यायैः सन् परपर्यायैः असन् इति चतुर्थो भंगः ।

अर्थ--अब चार विकलादेशी भंग कहते है. जो वस्तुस्वरुप का एक देश ग्राही हो उसको विकलादेशी कहते हैं. जैसे–एकदेश में स्वपर्याय की सत्यता परपर्याय की असत्यता विविक्षित हो उस समय वस्तु सत्य, असत्यरुप है. अर्थात् घट है और घट नहीं भी है. इसी तरह जीव भी स्वपर्याय से सत् परपर्याय से असत्. एक समय अस्ति नास्तिरुप है. परन्तु कहने के लिये असंख्याता समय चाहिये वास्ते स्यात् पूर्वक–स्यात् अस्ति नास्ति यह चोथा भंग कहा.

तथा एकस्मिन् देशे स्वपर्यायैः सद्भावेन विवक्षितः अन्यत्र तु देशे स्वपरोभयपर्यायैः सत्वासत्वाभ्यां युगपदसांकेतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितः सन् अवक्तव्यरूपः पंचमो भङ्गो भवति एवं जीवोऽपि चेतनत्वादिपर्यायैः सन् शेषैरवक्तव्य इति ।

अर्थ—एक देशमें स्वपर्याय से सद्भाव–अस्तिता. विवक्षित कहने की इच्छा हो और अन्य देश में स्वपर दोनों पर्यायों से सत्वासत्व युगपत् असांकेतिक शब्द से विवक्षित हो वह अस्ति

अवक्तव्य नामक पांचवां भंग होता है. ऐसे जीव भी चेतनत्वादि पर्याय से अस्ति और शेष पर्यायों से अवक्तव्य है. इति स्यात् अस्ति अवक्तव्य रूप पांचवां भंग कहा.

तथा एकदेशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितो विशेषतः अन्यै-स्तु स्वपरपर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां सत्वासत्वाभ्यां युगपद-सांकेतिकेन शब्देन वक्तुं विवक्षितकुंभोऽसन् अवक्तव्यश्च भवति। अकुंभोऽवक्तव्यश्च भवतीत्यर्थः देशे तस्याकुंभत्वात् देशे अवक्तव्यत्वादिति षष्ठो भंगः।

अर्थ—एक देशमें परपर्याय से असद्भाव अर्पित—स्थापित किया जाय और अन्य देश में स्वपर्याय से अस्तिता और पर प-र्याय से नास्तिता को युगपत्—एक समय असांकेतिक शब्द से कहने के लिये इच्छा हो क्योंकि विना कहे श्रोता को ज्ञान नहीं हो सक्ता इस वास्ते स्यात् पदसे अन्य भांगों का अपेक्षा रखते हुवे तथा सब धर्म की समकालता जनाने के लिये स्यात् नास्ति अवक्तव्य यह छठ्ठा भंग कहा। एवं जीव परपर्याय से नास्ति और स्वपर—उभय पर्याय से अवक्तव्य पुर्ववत् समझ लेना इति स्यात् नास्ति अव-क्तव्य रूप छठ्ठा भंग कहा.

तथा एकदेशे स्वपर्यायैः सद्भावेनार्पितः एकस्मिन् देशे परपर्यायैरसद्भावेनार्पितः अन्यस्मिंस्तु देशे स्वपरोभय पर्यायैः सद्भावासद्भावाभ्यां युगपदेकेन शब्देनवक्तुं विव-क्षितः सन् असन् अवक्तव्यश्च भवति इति सप्तमो भङ्गः। ऐतेन एकस्मिन् वस्तुन्यर्पितानर्पितेन सप्तभंगी उक्ता।

अर्थ—एक देश में स्वपर्याय से अस्तिता अर्पित की जाय और एक देश में परपर्याय की नास्तिता. ये दोनों पर्याय सम-काल–एक समय में एक साथ रहे हुवे हैं. परन्तु वचने से नही कहे जाते. इस अपेक्षा से स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य यह सातवां भंग कहा. यह सप्तभंगी अर्पित, अनर्पित अर्थात् आरोप, अनारोप से कही हैं.

तत्र जीवः स्वधर्मे ज्ञानादिभिः अस्तित्वेन वर्तमानः तेन स्यात् अस्तिरूपः प्रथम भङ्गः, अत्र स्वधर्मा अस्तिपदगृहीताः शेषनास्तित्वादयो धर्माः अवक्तव्यधर्माश्च स्यात् पदेन संगृहीताः ।

अर्थ—जीव स्वधर्म विषय ज्ञानादि पर्यायों से अस्तिपने है इस वास्ते स्यातस्तिरूप प्रथम भंग हुवा. यहां स्वधर्म से अस्तिपद का ग्रहण, शेषनास्तित्वादि धर्म और अवक्तव्य धर्म का स्यात् पद से ग्रहण होता है.

विवेचन—अब सप्तभंगी का स्वरूप कहते हैं. जो एक द्रव्य में, एक गुण में, एक पर्याय में और एक स्वभाव में सात २ भंग सदा परिणत है. स्याद्वाद रत्नाकरावतारि का में भी कहा है—“ एक स्मिन् जीवादौ अनन्तधर्मापेक्षया सप्तभंगीनामानन्त्यं ” इस क्वन से तथा ‘ अत्थिजीवे ’ इत्यादि सूयगडांग सूत्र की गाथा से जान लेना । अब पहिला भंग लिखते हैं,—जीव के गुणपर्यायी समुदाय का जो आधार वह जीव का स्वद्रव्य है, ज्ञानादि गुण का अवस्थान असंख्यातप्रदेशरूप स्वक्षेत्र है, अगुरु

लघुता–हानिवृद्धि का मान यह स्वकाल है और उत्पादव्यय का भिन्न स्वभाव परिणमन तथा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-चारित्र, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्तउपभोग, अनन्तवीर्य, अनन्त अव्याबाध, अरूपी, अशरीरी, परमक्षमा, परममार्दव, परमआर्जव, स्वरुपभोगी प्रमुख स्व० स्वभाव से अनन्तज्ञेय–ज्ञायकपने जीवद्रव्य अस्ति है। इस तरह जीव का स्वधर्म ज्ञानादि गुण समस्त ज्ञेय ज्ञायकरूप स्वधर्मशक्ति से अनन्त अविभागरूप अर्थात् एकैक पर्याय अविभाग में सब अभिलाप्य अनभिलाप्य स्वभावका ज्ञायकपनो है. उसको विस्तार से लिखते है–मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यव प्रत्येकज्ञान के अविभाग पर्याय जुदे जुदे हैं. और केवलज्ञानके पर्याय जुदे हैं. विशेषावश्यक में गणधरवादके अन्तमें कहा है कि–जो आवर्ण योग्य वस्तु भिन्न है तो उसका आवरण भी भिन्न है. उसको क्षयोपशमादि भेदसे परोक्ष अथवा देशसे जाने और सम्पूर्ण आवर्ण के क्षय होनेसे प्रत्यक्ष रूपसे जानते हैं. परन्तु केवलज्ञान सर्वभावों का प्रत्यक्षदायक है. उसके प्रगट होनेसे दूसरे ज्ञानकी प्रवृत्ति है परन्तु भिन्नपने प्रकाशित नहीं होती; किन्तु केवलज्ञानका ही अन-पना कहाजाता है. किसी आचार्य का मत है कि ज्ञानके अविभाग पर्याय सब एक जाति के हैं. उन अविभागों में वर्णादि जानने की शक्ति अनेक प्रकारकी है. उसीमेंकी जो शक्ति प्रगट होती है उसके मतिज्ञानादि भिन्न २ नाम है और सब आवर्णों के क्षय होनेसे एक केवलज्ञान रहता है. छद्मस्थको ज्ञानका भास है इस तरह की व्याख्या भी है।

जीव अपने ज्ञानादि स्वगुण पर्यायोंसे ज्ञायकत्व, परिच्छेदकत्व, वेतृत्वादि रूपसे अस्ति है. इसतरह सब गुणोंमें स्वधर्म की अस्तिता है. और अविभाग पर्याय के समुह की एक प्रवृत्ति को गुण कहते हैं. वह स्वकार्य कारण धर्मपने अस्ति है. एवं छे द्रव्यो में स्वस्वरूपपने अस्तिता है. और नास्ति आदि छे भांगोंकी सापेक्षता रखनेके लिये स्यात् पद पूर्वक बोलना चाहिये इसलिये स्यात् अस्ति नामक प्रथम भंग कहा. अस्तिधर्म है वह नास्ति सहित है. स्यात् शब्द अस्ति धर्ममें नास्ति आदि धर्मोंकी सत्यता प्रगटकर्ता है.

तथा स्वजात्यन्यद्रव्याणां तद्धर्माणां च विजातिपरद्रव्याणां तद्धर्माणां च जीवे सर्वथैव अभावात् नास्तित्वं तेन स्यात् नास्तिरूपो द्वितीयो भङ्गः अत्र परधर्माणां नास्तित्वं नास्तिपदेन गृहीतं शेषा अस्तित्वादयः स्यात् पदेन गृहीता इति ।

अर्थ—स्वजातीय अन्यद्रव्योंका तथा उनमें रहे हुवे धर्मों का और विजातीय परद्रव्योंका तथा उनमें रहे हुए धर्मोंका जीवमें अभाव होनेसे नास्तित्व धर्म हुआ. इस कारणसे स्यात् नास्तिरूप दूसरा भंग होता है. यहां परधर्म की नास्तिता नास्तिपदसे ग्रहण करके शेष अस्ति आदि धर्मको स्यात् पदसे ग्रहण किया इति द्वितीय भङ्गः

विवेचन—अन्य जो सिद्ध, संसारी जीव हैं. उनके गुणपर्याय और अस्तित्वादि प्रमुख सर्व धर्म्मोंकी विवक्षित जीव में

नास्तिता है. जैसे अग्नी में और उसके कणीयें में दाहकत्व धर्म-तुल्य है. परन्तु अग्नि और कणीयेकी दाहकता परापर भिन्न है. अर्थात् जो दाहकता अग्निकी है वह कणीयें में नहीं है. और कणीयेकी अग्नि में नहीं है. इसीतरह एक जीवके ज्ञानादि गुण अन्य दूसरे जीवमें नहीं हैं. शेष चेतनत्व, ज्ञायकत्व कार्य धर्म तुल्य होते हुवे भी सबमें जो गुण है वह अपना २ है. एकका गुण दूसरे में नहीं जाता आता. इसलिये विजातीय अन्य द्रव्य, गुण, पर्याय और धर्म की विवक्षित जीवमें नास्ति है. इसीतरह गुण में भी अन्य द्रव्यकी नास्ति है और पर्याय अविभागमें भी स्वजातीय अविभाग कार्य कारणता की नास्ति है. इसतिरह परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावपने की नास्ति रही हुई है. उसमें असत्यादि अनन्त धर्मकी सापेक्षता भास करानेके लिये स्यात् पद पूर्वक यह द्वितीय स्यात् अस्तिनामक भंग कहा.

केषांचिद्धर्माणां वचन अगोचरत्वेन तेन स्यात् अवक्तव्य इति तृतीयोभङ्गः वक्तव्यः धर्मसापेक्षार्थं स्यात्पदग्रहणम्

अर्थ—अब तीसरा भंग कहते हैं. प्रत्येक वस्तुमें कितनेक धर्म ऐसे हैं. जिनका वचनद्वारा उच्चारण नहीं हो सक्ता उसको अवक्तव्य कहते हैं. उन सब धर्मों को केवली केवलज्ञानसे जानते हैं. तथापि वचनसे कहने के लिये वे भी असमर्थ हैं. ऐसे धर्म की अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य है परन्तु केवल अवक्तव्य कहने से वक्तव्य धर्म की नास्तिता प्रगट होती है और वस्तुमें वक्तव्य धर्म है. इसकी सापेक्षता के लिये स्यात् पद ग्रहण करके स्यात अवक्तव्य नामक तसिरा भंग कहा.

अत्र अस्तिकथने असंख्येयाः नास्तिकथनेप्यसंख्येयाः समयाः वस्तुनि, एकसमये अस्ति नास्ति स्वभावौ समकवर्तमानौ तेन स्यात् अस्ति नास्तिरूपश्चतुर्थो भङ्गः

अर्थ—अब चोथा भंग कहते हैं. अस्ति शब्दको उच्चारण करने के लिये असंख्याता समय चाहिये इसी तरह नास्ति शब्दको भी असंख्याता समय चाहिये और वस्तुमें अस्ति नास्ति दोनों धर्म एक समय है. इन दोनोंका एक साथ ज्ञान करानेके लिये और जो अस्ति है वह नास्ति न हो और नास्ति है वह अस्ति न हो इसकी सापेक्षताके लिये. स्यात् पूर्वक स्यात् अस्ति नास्ति नामक चोथा भंग कहा.

तत्र अस्ति नास्ति भावाः सर्वे वक्तव्या एव न अवक्तव्या इति शङ्कानिवारणाय स्यात् अस्ति अवक्तव्य इति पञ्चमो भङ्गः स्यात् नास्ति अवक्तव्य इति षष्ठः अत्र वक्तव्या भावाः स्यात् पदे गृहीताः ।

अर्थ—अस्ति नास्ति सर्व भाव वक्तव्य ही है ? किन्तु अवक्तव्य नहीं है ? ऐसी शंका निवारण करनेके लिये स्यात् अस्ति अवक्तव्य पांचका भंग कहा और स्यात् नास्ति अवक्तव्य छाट्ठ भंग कहा । यहां वक्तव्य भाव स्यात् पदसे ग्रहण किया है.

अत्र अस्तिभावा वक्तव्यास्तथा अवक्तव्यास्तथा नास्ति भावा वक्तव्या अवक्तव्या एकस्मिन् वस्तुनि, गुणे, पर्याये, एक समये, परिणममाना इति ज्ञापनार्थं स्यात् अस्ति नास्ति

अवक्तव्य इति सप्तमो भङ्गः॥ अत्र वक्तव्या भावास्ते स्यात्-पदेन संगृहीता इति अस्तित्वेन अस्तिधर्मा नास्तित्वेन नास्तिधर्मा युगपदुभयस्वभावत्वेन वक्तुमशक्यत्वात् अव-क्तव्यः स्यात्पदे च अस्त्यादीनामेव नित्यानित्याद्यनेकान्त संग्राहकम् ।

अर्थ—अस्ति स्वभाव वक्तव्य तथा अवक्तव्य है और नास्ति स्वभाव भी वक्तव्य तथा अवक्तव्य है. इस सब धर्मोंका एक वस्तुमें, एक गुणमें, एक पर्यायमें एक समय परिणमन है इसको जाननेके वास्ते स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य नामक सातवां भंग कहा. यहां वक्तव्यादि भावको स्यात् पदसे ग्रहण किया है. अस्तिपनेसे अस्ति धर्म और नास्ति पनेसे नास्तिधर्म दोनों एक समय उभयरूप कहनेके लिये अशक्य होनेसे अवक्तव्य है. और स्यात् पद अस्ति तथा नित्यानित्यादि अनेकान्त संग्राहक है. ।

विवेचन—अब सातवां भंग कहते हैं. अस्ति नास्ति स्वभाव वक्तव्य, अवक्तव्य रुपसे एक समय एक वस्तुमें, एक गुणमें, एक पर्यायमें समकाल अर्थात् एकसाथ परिणमन होते हैं. इसको जाननेके लिये स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य यह सातवां भंग कहा। अब अस्ति धर्म है वह नास्ति न हो और नास्तिधर्म है वह अस्ति न हो इसीतरह वक्तव्य है वह अवक्तव्य न हो और अवक्तव्य, वक्तव्य न हो ऐसा ज्ञान करानेके लिये स्यात् पद ग्रहण किया है. अब अस्ति भाव है वह अस्तिधर्म और नास्ति भाव है वह नास्ति धर्म है तथा दोनों धर्म एक समय उभयरूप कहनेके लिये अशक्य है. इसलिये

अवक्तव्य है। स्यात्पद अस्ति, नास्ति, नित्यानित्य प्रमुख अनेकान्त संग्राहक है जैसे—अस्तिधर्म है वह नित्यरूप है. अनित्यरूप है. एकरूप है. अनेकरूप है भेदरूप है. अभेदरूप है. इत्यादि अनेकान्त ग्राही है. क्योंकि वस्तुके एक गुणमें अस्तिता, नास्तिता, नित्यता, अनित्यता, भेदता, अभेदता, वक्तव्यता, अवक्तव्यता, भव्यता, अभव्यता रूप अनेकान्तपना है इसीको स्याद्वाद कहते हैं. इसकी सापेक्षता भास करानेके लिये स्यात् पद कहा है.

आत्मामें स्वधर्मकी अस्तिता है और परधर्मकी नास्तिता हैं. स्वगुणका परिणमन अनित्य है और वही गुण रूपसे नित्य है। द्रव्यपिंड़रूपसे एक है और गुण, पर्याय रूपसे अनेक है. तथा आत्मा कारण कार्यरूपसे प्रतिसमय नवीनता २ को प्राप्त करता है यह भवन धर्म है. तथापि मूल धर्मसे नहीं पलटता उसको अभवन धर्म कहते हैं. इत्यादि अनेक परिणति युक्त है। इसीतरह षट् द्रव्यके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करके हेय उपादेय रूपसे श्रद्धा, भास प्रगट हो वही सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन हैं. इसीसे जीवकी अशुद्धता अर्थात् परकर्ता, परभोक्ता, परग्राहकता दूर होती है इसी साधनसे आत्मा आत्मस्वरूपपने रहता है.

स्यात् अस्ति, स्यात्नास्ति, स्यात् अवक्तव्य रूपास्त्रयाः सकलादेशाः संपूर्ण वस्तुधर्म ग्राहकत्त्वात्, मूलतः अस्ति भावा अस्तित्वेन सन्ति, नास्तित्वेन न सन्ति एवं सप्त भंगाः एवं नित्यत्व सप्तभङ्गी अनित्यत्व सप्तभङ्गी एवं सामान्य धर्माणां, विशेष धर्माणां, गुणानां, पर्यायाणां प्रत्येकम् सप्तभङ्गी तद्यथा.

अर्थ—स्यात् अस्ति, स्यात् नास्ति, स्यात् अवक्तव्य ये तीनो भंग वस्तुके सम्पूर्ण धर्मग्राही होनेसे सकलादेशी कहे जाते हैं. मुख्यतासे अस्तिभाव अस्तिरूप है. नास्तिरूप नहीं है. इसीतरह सातोभंग समजना. एवं नित्यपने सप्तभंगी, अनित्यपने सप्तभंगी और सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गुण, पर्याय प्रत्येक में सप्तभंगी कहना।

विवेचन—स्यात्‌अस्ति, स्यात्‌नास्ति और स्यात् अवक्तव्य य तीनो भांगे सकलदेशी हैं. शेष चार भंग विकलादेशी कहलाते हैं. ये चारों भांगे वस्तुके एक देशग्राही हैं. तथा अस्ति धर्म में जो अस्तिता है वह नास्तिपने नहीं है किन्तु नास्तिभाव नास्तिरूप है उस में अस्तिता नहीं है। शंका—वस्तु में जो नास्तिपना है उसको अस्तिपने कहते हो तो नास्तिपने में अस्तिताकी नां क्यों कहते हो? उत्तर—जो नास्तिता है वह अस्तिरूप है और अस्तिधर्म है वह नास्तिरूप में नहीं है। इसी तरह नित्यता, अनित्यता, सामान्यधर्म, विशेषधर्म, गुण, पर्यायादि में भी सप्तभंगी लगालेना जैसे.

ज्ञानं ज्ञानत्वेन अस्ति दर्शनादिभिः स्वजाति धर्मैः अचेतनादिभिः विजातिधर्मैः नास्ति, एवं पंश्चास्तिकये प्रत्यस्तिकायमनन्ता सप्तभंग्यो भवन्ति अस्तित्वाभावे गुणाभावात् पदार्थे शुन्यतापत्तिः नास्तिताभावे कदाचित् परभावत्वेन परिणामनात् सर्वसङ्करतापत्तिः व्यंजक योगे सत्ता स्फुरति तथा असत्ताया अपि स्फुरणात् पदार्थानामनियतामतिपत्तिः तत्वार्थे—तद्भावाव्ययं नित्यम्॥

अर्थ—अब गुणकी सप्तभंगी कहते हैं जैसे–ज्ञान गुण है वह ज्ञानगुणरूप से अस्ति है और दर्शनादि स्वजाति एक द्रव्य-व्यापी गुण तथा स्वजातिय भिन्न जीव व्यापी ज्ञानादि गुण और पर द्रव्य में रहा हुवा अचेतनादि धर्मकी नास्तिता है. इस तरह पंचास्तिकाय के प्रत्येक अस्तिकाय में अनन्त सप्तभंगी प्राप्त होती है. स्याद्वाद परिणाम को सप्तभंगी कहते हैं.

अगर वस्तु में अस्तित्व धर्म या नास्तित्व धर्म को न माने तो कौनसा दोष उत्पन्न होता है ? वस्तु में अस्तिपना न मानने से गुणपर्याय का अभाव होता है और गुण के अभाव से पदार्थ शून्य भावको प्राप्त होता है। और नास्तित्व धर्म न मानने से किसी समय वस्तु परवस्तुपने. अथवा परगुणपने या जीव अ-जीवपने, अजीव जीवपने प्राप्त हो यह शंकरता दोष उत्पन्न होता है। व्यंजकता अर्थात् प्रगटता योग से अस्ति धर्म स्फुरायमान होता है परन्तु जिस धर्मकी सत्ता अस्ति नहीं है वह स्फुरायमान भी नहीं होता और जो नास्तिपना न माने तो असत्तापने स्फुरा-यमान होता है और जब असत्ता स्फुरायमान होजाय तब द्रव्य अनिश्चयात्मक होजाय इस वास्ते सब भाव अस्ति, नास्तिमयी है. अब व्यंजकता का दृष्टान्त कहते है. जैसे–नये अर्थात् कोरे कुंभ में सुगन्धताकी सत्ता है तभी पानी के योग से वासना प्रगट होती है. वस्त्रादि में उस धर्मकी सत्ता नहीं है तो उसकी प्रगटता भी नहीं हैं. एवं सर्वत्रापि.

न्यायतीर्थ मुनि न्यायविजयजी कृत

जैनदर्शन से स्याद्वाद.

स्याद्वादका अर्थ है—वस्तुका भिन्न भिन्न दृष्टि—बिंदुओंसे विचार करना, देखना या कहना। एक ही वस्तुमें अमुक अमुक अपेक्षासे भिन्न भिन्न धर्मोंको स्वीकार करनेका नाम 'स्याद्वाद' है। जैसे एक ही पुरुषमें पिता, पुत्र, चचा, भतीजा, मामा, भानेज आदि व्यवहार माना जाता है, वैसे ही एक ही वस्तुमें अनेक धर्म माने जाते हैं। एक ही घटमें नित्यत्व और अनित्यत्व आदि विरुद्ध रूपसे दिखाई देते हुए धर्मोंको अपेक्षा दृष्टिसे स्वीकार करनेका नाम 'स्याद्वाद दर्शन' है।

एक ही पुरुष अपने पिताकी अपेक्षा पुत्र, अपने पुत्रकी अपेक्षा पिता, अपने भतीजे और भानजेकी अपेक्षा चचा और मामा एवं अपने चचा और मामाकी अपेक्षा भतीजा और भानजा होता है। प्रत्येक मनुष्य जानता है कि इस प्रकार परस्पर विरुद्ध दिखाई देनेवाली बातें भी भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे, एक ही मनुष्य में स्थित रहती हैं। इसी तरह नित्यत्व आदि परस्पर विरोधी धर्म भी एक ही घटमें भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे क्यों नहीं माने जा सकते हैं।

पहिले इस बातका विचार करना चाहिए कि 'घट' क्या

पदार्थ है ? हम देखते हैं कि एक ही मिट्टीमेंसे घडा, कूँडा, सिकोरा आदि पदार्थ बनते हैं। घड़ा फोड़ दो और उसी मिट्टीसे बने हुए कूँडेको दिखाओ। कोई उसको घडा नहीं कहेगा। क्यों? क्यों मिट्टी तो वही है; परंतु कारण यह है कि उसकी सूरत बदल गई। अब वह घडा नहीं कहा जा सकता है। इससे सिद्ध होता है कि 'घडा' मिट्टीका एक आकार-विशेष है। मगर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि-आकार विशेष मिट्टीसे सर्वथा भिन्न नहीं होता है। आकारमें परिवर्तित मिट्टी ही जब 'घडा' कूँडा आदि नामोंसे व्यवहृत होती है, तब यह कैसे माना जा सकता है कि घडेका आकार और मिट्टी सर्वथा भिन्न है! इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि घडेका आकार और मिट्टी ये दोनों घडेके स्वरूप हैं। अब यह विचारना चाहिए कि उभय स्वरूपोंमें विनाशी स्वरूप कौनसा है और ध्रुव कौनसा ? यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि घड़ेका आकार-स्वरूप विनाशी है। क्योंकि घडा फूट जाता है। घड़ेका दूसरा स्वरूप जो मिट्टी है, वह अविनाशी है। क्यों कि मिट्टीके कई पदार्थ बनते हैं और टूट जाते हैं; परन्तु मिट्टी तो वह ही रहती है। ये बातें अनुभवसिद्ध है।

हम देख गये हैं कि घड़ेका एक स्वरूप विनाशी है और दूसरा ध्रुव। इससे सहजहीमें यह समझा जा सकता हैं कि विनाशी रूपसे घड़ा अनित्य है और ध्रुव रूपसे घड़ा नित्य है। इस तरह एक ही वस्तुमें नित्यता और अनित्यताकी मान्यताको रखनेवाले सिद्धान्त को ' स्याद्वाद ' कहा गया है।

स्याद्वादका क्षेत्र उक्त नित्य और अनित्य इन दोही बातोंमें पर्याप्त नहीं होता है। * सत्त्व और असत्त्व आदि दूसरी, विरुद्ध-रूपमें दिखाइ देनेवाली बातें भी स्याद्वादमें आ जाती हैं। घड़ा आँखोंसे प्रत्यक्ष दिखाई देता है, इससे यह तो अनायास ही सिद्ध हो जाता है कि वह 'सत्' है। मगर न्याय कहता है कि अमुक दृष्टिसे वह 'असत्' भी है।

यह बात खास विचारणीय है कि, प्रत्येक पदार्थ जो 'सत्' कहलाता है किस लिए? रूप, रस, आकार आदि अपने ही गुणोंसे—अपने ही धर्मोंसे—प्रत्येक पदार्थ 'सत्' होता है। दूस-रेके गुणोंसे कोई पदार्थ 'सत्' नहीं हो सकता है। जो बाप कहाता है, वह अपने पुत्रसे, किसी दूसरेके पुत्रसे नहीं। यानी खास पुत्र ही पुरुषको बाप कहता है; दूसरेका पुत्र उसको बाप नहीं कह सकता। इस तरह जैसे स्वपुत्रकी अपेक्षा जो पिता होता है वही पर-पुत्रकी अपेक्षा अपिता होता है; वैसे ही अपने गुणोंसे अपने धर्मोंसे—अपने स्वरूपसे जो पदार्थ 'सत्' है, वही पदार्थ दूसरेके धर्मोंसे—दूसरोंमें रहे हुए गुणोंसे—दूसरोंके स्वरूपसे 'सत्' नहीं हो सकता है। जब 'सत्' नहीं हो सकता है, तब यह बात स्वतः सिद्ध हो जाती है कि वह 'असत्' होता है।

इस तरह भिन्न भिन्न अपेक्षाओंसे 'सत्' को 'असत्' कहनेमें विचारशील विद्वानोंको कोई बाधा दिखाई नहीं देगी।

---

* अस्तित्व और नास्तित्व।

'सत्' को भी 'सत्' पनेका जो निषेध किया जाता है, वह ऊपर कहे अनुसार अपनेमें नहीं रही हुई विशेष धर्मकी सत्ताकी अपेक्षासे। जिसमें लेखनशक्ति या वक्तृत्वशक्ति नहीं है, वह कहता है कि—" मैं लेखक नहीं हूँ।" या " मैं वक्ता नहीं हूँ।" इन शब्दप्रयोगोंमें 'मैं' और साथ ही 'नहीं' का उच्चारण किया गया है, वह ठीक है। कारण, हरेक समझ सकता है कि यद्यपि 'मैं' स्वयं 'सत्' हूँ, तथापि मुझमें लेखन या वक्तृत्वशक्ति नहीं है इसलिए उस शक्तिरूपसे " मैं नहीं हूँ "। इस तरह अनुसंधान करनेसे सर्वत्र एक ही व्यक्तिमें 'सत्त्व' और 'असत्त्व' का स्याद्वाद बराबर समझमें आ जाता है।

स्याद्वादके सिद्धान्तको हम और भी थोडा स्पष्ट करेंगे—

सारे पदार्थ उत्पत्ति, स्थिति और विनाश, ऐसे तीन धर्मवाले हैं। उदाहरणार्थ—एक सुवर्णकी कंठी लो। उसको तोड़कर डोरा बना डाला। इस बातको हरेक समझ सकता है कि कंठी नष्ट हुई और डोरा उत्पन्न हुआ। मगर यह नहीं कहा जा सकता है कि, कंठी सर्वथा नष्ट ही हो गई है और डोरा बिलकुल ही नवीन उत्पन्न हुआ है। डोरेका बिलकुल ही नवीन उत्पन्न होना तो उस समय माना जा सकता है, जब कि उसमें कंठीकी कोइ चीज आई ही न हो। मगर जब कि कंठीका सारा सुवर्ण डोरेमें आ गया है; कंठीका आकारमात्र ही बदला है; तब यह नहीं कहा जा सकता है कि डोरा बिलकुल नया उत्पन्न हुआ है। इसी तरह

---

१ " उत्पाद-व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्।"—तत्त्वार्थसूत्र, 'उमास्वाति' वाचक।

यह मानना होगा कि कंठी भी सर्वथा नष्ट नहीं हुई है। कंठीका सर्वथा नष्ट होना तब ही माना जा सकता है जब कि कंठीकी कोई चीज बाकी न बची हो। परन्तु जब कंठीका सारा सुवर्ण ही डोरेमें आ गया है तब यह कैसे कहा जा सकता है कि कंठी सर्वथा नष्ट हो गई है। इससे यह स्पष्ट हो गया कि,—कंठीका नाश उसके आकारका नाश मात्र है और डोरेकी उत्पत्ति उसके आकारकी उत्पत्ति मात्र है और कंठी और डोरेका सुवर्ण एक ही है। कंठी और डोरा एक ही सुवर्णके आकारभेदके सिवा दूसरा कुछ नहीं है।

इस उदाहरणसे यह भली प्रकार समझमें आ गया कि कंठीको तोड़ कर डोरा बनानेमें कंठीके आकारका नाश, डोरेके आकारकी उत्पत्ति और सुवर्णकी स्थिति इस प्रकार उत्पाद, नाश और ध्रौव्य, (स्थिति) तीनों धर्म बराबर हैं। इसी तरह घड़ेको फोड़कर कूँडा बनाये हुए उदाहरणको भी समझ लेना चाहिए। घर जब गिर जाता है तब जिन पदार्थोंसे घर बना होता है वे चीजें कभी सर्वथा विलीन नहीं होती हैं। वे सब चीजें स्थूल रूपसे अथवा अन्ततः परमाणु रूपसे तो अवश्यमेव जगत्में रहती ही हैं। अतः तत्त्वदृष्टिसे यह कहना अघटित है कि घर सर्वथा नष्ट हो गया है। जब कोई स्थूल वस्तु नष्ट हो जाती है तब उसके परमाणु दूसरी वस्तुके साथ मिलकर नवीन परिवर्तन खड़ा करते हैं; संसारके पदार्थ संसारही में इधर उधर विचरण करते हैं

जिससे नवीन नवीन रूपोंका प्रादुर्भाव होता है। दीपक बुझ गया, इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह सर्वथा नष्ट हो गया है। दीपकका परमाणु–समूह वैसाका वैसा ही मौजूद है। जिस परमाणु-संघातसे दपिक उत्पन्न हुआ था, वही परमाणु-संघात, दूसरा रूप पा जानेसे, दीपकरूपमें न दीखकर, अंधकार—रूपमें दीखता है; अन्धकार रूपमें उसका अनुभव होता है। सूर्यकी किरणोंसे पानीको सूखा हुआ देखकर, यह नहीं समझ लेना चाहिए कि पानीका अत्यंत अभाव हो गया है। पानी, चाहे किसी रूपमें क्यों न हो, बराबर स्थित है। यह हो सकता है कि, किसी वस्तुका स्थूलरूप नष्ट हो जाने पर उसका सूक्ष्मरूप दिखाई न दे मगर यह नहीं हो सकता कि उसका सर्वथा अभाव ही हो जाय यह सिद्धान्त अटल है कि न कोई मूल वस्तु नवीन उत्पन्न होती है और न किसी मूल वस्तुका सर्वथा नाश ही होता है। दूधसे बना हुआ दही, नवीन उत्पन्न नहीं हुआ। यह दूधहीका परिणाम है। इस बातको सब जानते हैं कि दुग्धरूपसे नष्ट होकर दही रूपमें आनेवाला पदार्थ भी दुग्धहीकी तरह 'गोरस' कहवाता है। अत एव गोरसका त्यागी दुग्ध और दही दोनों चीजें नहीं खा सकता है। इससे दूध और दहीमें जो साम्य है वह अच्छी तरह अनुभवमें आ सकता है। * इसी प्रकार सब जगह समझना चाहिए कि,

---

* "पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः।
अगोरसव्रतो नोभे तस्माद् वस्तु त्रयात्मकम्" ॥

—शास्त्रवार्तासमुच्चय, हरिभद्रसूरि।

मूलतत्त्व सदा स्थिर रहते हैं; और इसमें जो अनेक परिवर्तन होते रहते हैं; यानी पूर्वपरिणामका नाश और नवीन परिणामका प्रादुर्भाव होता रहता है, वह विनाश और उत्पाद है इससे सारे×पदार्थ उत्पत्ति विनाश और स्थिति (ध्रौव्य) स्वभाववाले प्रमाणित होते हैं। जिसका उत्पाद, विनाश होता है उसको जैनशास्त्र 'पर्याय' कहते है। जो मूल वस्तु सदा स्थायी है, वह 'द्रव्य' के नामसे पुकारी जाती है। द्रव्यसे (मूल वस्तुरूपसे) प्रत्येक पदार्थ नित्य है, और पर्यायसे अनित्य है। इस तरह प्रत्येक पदार्थको न एकान्त नित्य और न एकान्त अनित्य, बल्के नित्यानित्यरूपसे मानना ही 'स्याद्वाद' है।

इसके सिवा एक वस्तुके प्रति 'अस्ति' 'नास्ति' का संबंध भी–जैसा कि ऊपर कहा गया है–ध्यानमें रखना चाहिए। घट (प्रत्येक पदार्थ) अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'सत्' है और दूसरेके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे 'असत्' है। जैसे–वर्षाऋतुमें, काशीमें, जो मिट्टीका काला घडा बना है वह द्रव्यसे मिट्टीका है, मृत्तिकारूप है; जलादिरूप नहीं है; क्षेत्रसे बनारसका है, दूसरे क्षेत्रोंका नहीं है; कालसे वर्षा–ऋतुका है दूसरी ऋतुओंका

× "उत्पन्नं दधिभावेन नष्टं दुग्धतया पयः।
गोरसत्वात् स्थिरं जानन् स्याद्वादद्विट् जनोऽपि कः ?॥"

—अध्यात्मोपनिषद्, यशोविजयजी।

+ **विज्ञानशास्त्र** भी कहता है कि, मूलप्रकृति ध्रुव–स्थिर है और उससे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ उसके रूपान्तर–परिणामान्तर हैं। इस तरह उत्पाद, विनाश और ध्रौव्यके जैनसिद्धान्तका, विज्ञान (Scince) भी पूर्णतया समर्थन करता है।

नहीं है और भावसे काले वर्णवाला है अन्य वर्णका नहीं है। संक्षेपमें यह है, कि प्रत्येक वस्तु अपने स्वरूपहीसे 'अस्ति' कही जा सकती है दूसरेके स्वरूपसे नहीं। जब वस्तु दूसरेके स्वरूपसे 'अस्ति' नहीं कहलाती है तब उसके विपरीत कहलायगी; यानी 'नास्ति'।

स्याद्वादका एक उदाहरण और देंगे। वस्तुमात्रमें सामान्य और विशेष ऐसे दो धर्म होते हैं। सौ 'घडे' होते हैं उनमें 'घडा' घडा, ऐसी एक प्रकारकी जो बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यह बताती है कि तमाम घडोंमें सामान्यधर्म-एकरूपता है मगर लोग उनमेंसे अपने भिन्न भिन्न घडे जब पहिचान कर उठा लेते हैं तब यह मालूम होता है कि प्रत्येक घडेमें कुछ न कुछ पहिचानका चिन्ह है, यानी भिन्नता है। यह भिन्नता ही उनका विशेष-धर्म है। इस तरह सारे पदार्थोंमें सामान्य और विशेष धर्म हैं। ये दोनों धर्म सापेक्ष हैं; वस्तुसे अभिन्न हैं। अतः प्रत्येक वस्तुको सामान्य और विशेष धर्मवाली समझना ही स्याद्वाददर्शन है*।

स्याद्वादके संबंधमें कुछ लोग कहते हैं कि, यह संशयवाद है निश्चयवाद नहीं। एक पदार्थको नित्य भी समझना और अनित्य भी, अथवा एक ही वास्तुका 'सत्' भी मानना और 'असत्' भी मानना संशयवाद नहीं है तो और क्या है? मगर विचारक×

---

* स्याद्वादके विषयमे तार्किकोंकी तर्कणाएँ अतिप्रबल है। **हरिभद्रसूरिने** 'अनेकान्तजयपताका' में इस विषयका प्रौढताके साथ विवेचन किया है।

× गुजरातके प्रसिद्ध विद्वान् प्रो० **आनंदशंकर** ध्रुवने अपने एक व्याख्यानमें

लोगोंको यह कथन—यह प्रश्न अयुक्त जान पडता है। जो संशयके स्वरूपको अच्छी तरह समझते हैं, वे स्याद्वादको संशयवाद कहने-का कभी साहस नहीं करते। कई वार रातमें, काली रस्सीको देखकर संदेह होता है कि—"यह सर्प है या रस्सी?" दूरसे वृक्षके ठूँठको देखकर संदेह होता है कि—"यह मनुष्य है या वृक्ष?" ऐसी संशयकी अनेक बातें है, जिनका हम कई वार अनुभव करते हैं। इस संशयमें सर्प और रस्सी अथवा वृक्ष और मनुष्य दोनोंमेंसे एक भी वस्तु निश्चित नहीं होती है। पदार्थका ठीक तरहसे समझमें न आना हो संशय है। क्या कोई स्याद्वादमें इस तरहका संशय बता सकता है? स्याद्वाद कहता है कि, एक ही वस्तुका भिन्न भिन्न अपेक्षासे; अनेक तरहसे

स्याद्वादके संबंधमें कहा था:—"स्याद्वादका सिद्धान्त अनेक सिद्धान्तोंको देखकर उनका समन्वय करनेके लिए प्रकट किया गया है। स्याद्वाद हमारे सामने एकी भावका दृष्टिबिन्दु उपस्थित करता हैं। शंकराचार्यने स्याद्वादके ऊपर जों आक्षेप किया है, उसका, मूल रहस्यके साथ कोई संबंध नहीं है। यह निश्चय हैं कि विविध-दृष्टिबिन्दुओं द्वारा निरीक्षण किये विना किसी वस्तुका संपूर्ण स्वरूप समझमें नहीं आ सकता हैं। इस लिए स्याद्वाद उपयोगी और सार्थक हैं। महावीरके सिद्धान्तोंमें बताये गये स्याद्वदको कई संशयवाद बताते हैं। मगर मैं यह बात नहीं मानता। स्याद्वाद संशयवाद नहीं है। यह हमको एक मार्ग बताता है-यह हमें सिखाता हैं कि विश्वका अवलोकन किस तरह करना चाहिए।

काशीके स्वर्गीय महामहोपाध्याय **राममिश्रशास्त्रीने** स्याद्वादके लिऐ अपना जो उत्तम अभिप्राय दिया था उसके लिए उनका 'सुजन-सम्मेलन' शीर्षक व्याख्यान देखना चाहिए।

देखो । एक ही वस्तु अमुक अपेक्षासे 'अस्ति' है यह निश्चित बात है; और अमुक अपेक्षासे 'नास्ति' है, यह भी बात निश्चित है । इसी तरह, एक वस्तु अमुक दृष्टिसे नित्यस्वरूप भी निश्चित है और अमुक दृष्टिसे अनित्यस्वरूप भी निश्चित है । इस तरह एक ही पदार्थको परस्परमें विरुद्ध* मालूम होनेवाले दो धर्मोंसहित होनेका जो निश्चय करना है, वही स्याद्वाद है । इस स्याद्वादका 'संशयवाद' कहना मानो प्रकाशको अंधकार बताना है ।

"स्याद् अस्त्येव घटः" स्याद् नास्त्येव घटः ।"
"स्याद् नित्य एव घटः" स्याद् अनित्य एव घटः ।"

स्याद्वादके 'एव'कार युक्त इन वाक्योंमें—अमुक× अपेक्षासे घट 'सत्' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'असत्' ही है । अमुक अपेक्षासे घट 'नित्य' ही है और अमुक अपेक्षासे घट 'अनित्य' ही है—इस प्रकार निश्चयात्मक अर्थ समझना चाहिए । 'स्यात्' शब्दका अर्थ 'कदाचित्' 'शायद' या इसी प्रकारके दूसरे संशयात्मक शब्दोंसे नहीं करना चाहिए । निश्चयवादमें संशयात्मक

---

* वास्तवमें विरुद्ध नहीं ।

× 'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है—अमुक अपेक्षासे । (सप्तभङ्गीमें, आगे इसका विशेष विवेचन है)...विशाल दृष्टिसे दर्शनशास्त्रोंका अवलोकन करनेवाले भली प्रकारसे समझ सकते हैं कि, प्रत्येक दर्शनकारको 'स्याद्वाद सिद्धान्त' स्वीकारना पड़ा है । सत्त्व, रज और तम, इन तीन परस्पर

शब्दका क्या काम ? घटको घटरूपसे समझना जितना यथार्थ है—निश्चयरूप है, उतना ही यथार्थ—निश्चयरूप, घटको अमुक अमुक दृष्टिसे अनित्य और नित्य दोनो रूपसे, समझना है । इससे स्याद्वाद अव्यवस्थित या अस्थिर सिद्धान्त भी नहीं कहा जा सकता है ।

अब वस्तुके प्रत्येक धर्म में स्याद्वाद की विवेचना, जिसको 'सप्तभङ्गी' कहते हैं, की जाती है ।

विरुद्ध गुणवाली प्रकृतिको माननेवाला सांख्यदर्शन; × पृथ्वीको परमाणुरुपसे नित्य और स्थूलरुपसे अनित्य माननेवाला तथा द्रव्यत्व, पृथ्वीत्व आदि धर्मोंको सामान्य और विशेषरुपसे स्वीकार करनेवाला × नैयायिक वैशेषिक दर्शन; अनेक वर्णयुक्त वस्तुके अनेकवर्णाकारवाले एक चित्रज्ञानको, जिसमें अनेक विरुद्ध वर्ण प्रतिभासित होते है— माननेवाला* बौद्धदर्शन. प्रमाता,

---

* "इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्यैर्विरुद्धैर्गुम्फितं गुणैः ।
सांख्यः संख्यातां मुख्यो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

+ "चित्रमेकमनेकं च रुपं प्रामाणिकं वदन् ।
योगो वैशेषिको वापि नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

भावार्थ—नैयायिक और वैशेषिक एक चित्र रुप मानते हैं । जिसमें अनेक वर्ण होते हैं उसे चित्र-रुप कहते हैं । इसको एकरुप और अनेकरूप कहना यह स्याद्वादकी सीमा हैं ।

§ "विज्ञानस्यैकमाकारं नानाऽऽकारकरम्बितम् ॥
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्" ॥
—हेमचन्द्राचार्यकृत वीतरागस्तोत्र ।

सप्तभंगी ।

ऊपर कहा जा चुका है कि 'स्याद्वाद' भिन्न भिन्न अपेक्षासे अस्तित्व–नास्तित्व, नित्यत्व–अनित्यत्व आदि अनेक धर्मोंका एक ही वस्तुमें होना बताता है । इससे यह समझमें आ जाता है कि, वस्तुस्वरूप जिस प्रकारका हो, उसी रीतिसे उसकी विवेचना करनी चाहिए । वस्तुस्वरूपकी जिज्ञासावाले किसीने पूछा कि–" घडा क्या अनित्य है ? " उत्तरदाता यदि इसका यह उत्तर

प्रमिति और प्रमेय आकारवाले एक ज्ञानको, जो उन तीन पदार्थोंका प्रतिभासरूप है, मंजूर करनेवाला मीमांसक दर्शन और अन्य प्रकार से दूसरे* भी स्याद्वादको अर्थतः स्वीकार करते हैं । अन्तमें चार्वाकको भी स्याद्वादकी आज्ञामे बंधना पडा है । जैसे—पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार तत्त्वोंके सिवा पाँचवां तत्त्व चार्वाक नहीं मानता । इसलिए चार तत्त्वोंसे उत्पन्न होनेवाले चैतन्यको चार्वाक चार तत्त्वोंसे अलग नहीं मान सकता हैं ।

---

* " जातिव्यक्त्यात्मकं वस्तु वदन्ननुभवोचितम् ।
भट्टो वापि मुरारिर्वा नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ।।
" अबद्धं परमार्थेन बद्धं च व्यवहारतः ।
ब्रवाणो ब्रह्मवेदान्ती नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत् " ।।
" ब्रवाणा भिन्नभिन्नार्थान् नयभेदव्यपेक्षया ।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः स्यद्वादं सार्वतान्त्रिकम् " ।।

—यशोविजयजीकृत अध्यात्मोपनिषद् ।

भावार्थ—" जाति और व्यक्ति इन दो रूपोंसे वस्तुको बतानेवाले भट्ट और मुरारि स्याद्वादकी उपेक्षा नहीं कर सकते हैं । " " आत्माको व्यव-

दे कि घडा अनित्य ही है, तो उसका यह उत्तर या तो अधूरा है या अयथार्थ है। यदि यह उत्तर अमुक दृष्टिबिन्दुसे कहा गया है तो वह अधूरा है। क्योंकि उसमें ऐसा कोई शब्द नहीं है जिससे यह समझमें आवे कि यह कथन अमुक अपेक्षासे कहा गया है। अतः वह उत्तर पूर्ण होनेके लिए किसी अन्य शब्दकी अपेक्षा रखता है। अगर वह संपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंके विचारका

हारसे बद्ध और परमार्थसे अबद्ध माननेवाले ब्रह्मवादी स्याद्वादका तिरस्कार नहीं कर सकते हैं।" "भिन्न भिन्न नयोंकी विवक्षासे भिन्न भिन्न अर्थोंका प्रतिपादन करनेवाले वेद सर्वतन्त्रसिद्ध स्याद्वादको धिक्कार नहीं दे सकते हैं। चार्वाक यह भी जानता हैं कि, चैतन्यको पृथिव्यादिप्रत्येकतत्त्वरुप माना जाय तो घटादि पदार्थोंके चेतन बन जानेका दोष आ जाता है। अतएव चार्वाकका यह कथन हैं या चार्वाकको यह कहना चाहिए कि—चैतन्य, पृथिव्यादि अनेक तत्त्वरूप है। इस एक चैतन्यको अनेकवस्तुरुप—अनेकतत्वात्मक मानना × यह स्याद्वादहीकी मुद्रा है।

× यह ध्यानमें रखना चाहिए कि इस तरह माननेमें भी आत्माकी गरज पूरी नहीं होती है। और इसलिए आत्मसिद्धिके ग्रँथ देखने चाहिएँ। स्याद्वादके संबंधमें चार्वाककी सम्मत्ति लेनी चाहिए या नहीं, इस विषयमें हेमचन्द्राचार्य वीतरागस्तोत्रमें लिखते हैं कि:—

"सम्मतिर्विमतिर्वापि चार्वाकस्य न मृग्यते।
परलोकाऽऽत्ममोक्षेषु यस्य मुह्यति शेमुषी" ॥

भावार्थ—स्याद्वादके संबंधमें चार्वाककी, जिसकी बुद्धि परलोक, आत्मा और मोक्षके संबंधमें मूढ हो गई हैं, सम्मति या विमति (पसंदगी या नापसंदगी) देखनेकी जरुरत नहीं है।

परिणाम है तो अयथार्थ है। क्योंकि घडा (प्रत्येक पदार्थ) संपूर्ण दृष्टिबिन्दुओंसे विचार करने पर अनित्यके साथ ही नित्य भी प्रमाणित होता है। इससे विचारशील समझ सकते हैं कि—वस्तुका कोई धर्म बताना हो तब इस तरह बताना चाहिए कि जिससे उसके प्रतिपक्षी धर्मका उसमेंसे लोप न हो जाय। अर्थात् किसी भी वस्तुको नित्य बताते समय, उस कथनमें कोई ऐसा शब्द भी जरूर आना चाहिए कि जिससे उस वस्तुके अंदर रहे हुए अनित्यत्व धर्मका अभाव मालूम न हो। इसी तरह किसी वस्तुको अनित्य बतानेमें भी ऐसी शब्द अंदर रखना चाहिए कि जिससे उस वस्तु-गत नित्यत्वका अभाव सूचित न हो*। संस्कृत भाषामें ऐसा शब्द 'स्यात्' है। 'स्यात्' शब्दका अर्थ होता है 'अमुक अपेक्षासे।' 'स्यात्' शब्द अथवा इसीका अर्थवाची 'कथंचित्' शब्द या 'अमुक अपेक्षासे' वाक्य जोडकर+ 'स्यादनित्य एव घटः'—"घट अमुक अपेक्षासे अनित्य ही है" इस तरह विवेचन करनेसे, घटमें अमुक अन्य अपेक्षासे जो नित्यत्वधर्म रहा हुआ है, उसमें बाधा नहीं पहुंचती है।

* इसी तरह 'अस्तित्व' आदि धर्मोंमें भी समझ लेना चाहिए।

+ 'स्यात्' शब्द या उसीका अर्थवाची दूसरा शब्द जोडे विना भी वचन-व्यवहार होता है; मगर व्युत्पन्न पुरुषको सर्वत्र अनेकान्त-दृष्टिका अनुसंधान रहा करता है।

इससे यह समझमें आ जाता है कि वस्तुस्वरूपके अनुसार शब्दोंका प्रयोग कैसे करना चाहिए। जैनशास्त्रकार कहते हैं कि वस्तुके प्रत्येक धर्मके विधान और निषेधसे संबंध रखनेवाले शब्द प्रयोग सात प्रकारके हैं। उदाहरणार्थ हम 'घट को' लेकर इसके अनित्य धर्मका विचार करेंगे।

प्रथम शब्दप्रयोग—"यह निश्चित है कि घट अनित्य है। मगर वह अमुक अपेक्षासे।" इस वाक्यसे अमुक दृष्टिसे घटमें मुख्यतया अनित्यधर्मका विधान होता है।

दुसरा शब्दप्रयोग—"यह निःसन्देह है कि घट अनित्य धर्मरहित है, मगर अमुक अपेक्षासे।" इस वाक्यद्वारा घटमें अमुक अपेक्षासे, अनित्यधर्मका मुख्यतया निषेध किया गया है।

तीसरा शब्दप्रयोग—किसीनें पूछा कि—"घट क्या अनित्य और नित्य दोनों धर्मवाला है?" उसके उत्तरमें कहना कि "हां, घट अमुक अपेक्षासे, अवश्यमेव नित्य और अनित्य है।' यह तीसरा वचन-प्रकार है। इस वाक्यसे मुख्यतया अनित्य धर्मका विधान और उसका निषेध, क्रमशः किया जाता है।

चतुर्थ शब्दप्रयोग—"घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य है।" घट अनित्य और नित्य दोनों तरहसे क्रमशः बताया जा सकता है, जैसा कि तीसरे शब्दप्रयोगमें कहा गया है। मगर यदि क्रम विना-युगपत् (एक ही साथ) घटको अनित्य और

नित्य बताना हो तो, उसके लिए जैनशास्त्रकारोंने, 'अनित्य' 'नित्य' या दूसरा कोई शब्द उपयोगमें नहीं आ सकता इस लिए 'अवक्तव्य' शब्दका व्यवहार किया है। यह है भी ठीक। घट जैसे अनित्य रूपसे अनुभवमें आता है उसी तरह नित्य रूपसे भी अनुभवमें आता है। इससे घट जैसे केवल अनित्य रूपमें नहीं ठहरता वैसे ही केवल नित्य रूपमें भी घटित नहीं होता है बल्के वह नित्यानित्यरूप विलक्षण जातिवाला ठहरता है। ऐसी हालतमें यदि यथार्थ रूपमें नित्य और अनित्य दोनों क्रमशः नहीं किन्तु एक ही साथ—बताना हो तो शास्त्रकार कहते हैं कि इस तरह बतानेके लिए कोइ शब्द नहीं है।"* अतः घट अवक्तव्य है।

---

* शब्द एक भी ऐसा नहीं है कि जो नित्य और अनित्य दोनों धर्मोंको एक ही साथमें, मुख्यतया प्रतिपादन कर सके। इस प्रकारसे प्रतिपादन करनेकी शब्दोंमें शक्ति नहीं है। 'नित्यानित्य' यह समासवाक्य भी क्रमहीसे नित्य और अनित्य धर्मोंका प्रतिपादन करता है। एक साथ नहीं। "**सकृदुच्चरितं पदं सकृदेवार्थं गमयति**" अर्थात् **एकं पदमेकदैक धर्मावच्छिन्नमेवार्थं बोधयति**" इस न्यायसे, "एक शब्द, ऐकवार एक ही धर्मको—एक ही धर्मसे युक्त अर्थको प्रकट करता है" ऐसा अर्थ निकलता है। और ईससे यह समझना चाहिए कि—सूर्य और चन्द्र इन दोनोंका वाचक पुष्पदंत शब्द (ऐसे ही अनेक-अर्थ वाले दूसरे शब्द भी) सूर्य और चन्द्रको क्रमशः बोध कराता है, एक साथ नहीं। ईससे यह भी स्पष्ठ हो जाता है कि यदि अनित्य-नित्य धर्मोंको एक साथ बत्तलानेके लिए कोई नवीन सांकेतिक शब्द गढा जायगा तो उससे भी काम नहीं चलेगा।

यहाँ यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि एक ही साथमें, मुख्यतासे

चार वचन–प्रकार बताये गये। उनमें मूल तो प्रारंभके दो ही हैं। पिछले दो वचन–प्रकार प्रारंभके दो वचन–प्रकारके संयोगसे उत्पन्न हुए हैं। "कथंचित्–अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" "कथंचित्–अमुक अपेक्षासे घट नित्य ही है।" ये प्रारंभके दो वाक्य जो अर्थ बताते हैं वही अर्थ तीसरा वचन–प्रकार क्रमशः बताता है; और उसी अर्थको चौथा वाक्य युगपत्-एक साथ बताता है। इस चौथे वाक्य पर विचार करनेसे यह समझमें आ सकता है कि, घट किसी अपेक्षासे अवक्तव्य भी है। अर्थात् किसी अपेक्षासे घटमें 'अवक्तव्य' धर्म भी है; परन्तु घटको कभी एकान्त अवक्तव्य नहीं मानना चाहिए। यदि ऐसा मानेंगे तो घट जो अमुक अपेक्षासे अनित्य और अमुक अपेक्षासे नित्य रूपसे अनुभवमें आता है, उसमें बाधा आ जायगी। अतएव उपरके चारों वचन–प्रयोगोंको 'स्यात्' शब्दसे युक्त, अर्थात् कथंचित्–अमुक अपेक्षासे, समझना चाहिए।

इन चार वचनप्रकारोंसे अन्य तीन वचन–प्रयोग भी उत्पन्न किये जा सकते हैं।

पांचवा वचनप्रकार—"अमुक अपेक्षासे घट अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

नहीं कहे जा सकें ऐसे अनित्यत्व–नित्यत्व धर्मोंका 'अवक्तव्य' शब्दसे भी कथन नहीं हो सकता है। किन्तु वे, धर्म मुख्यतया एक ही साथ नहीं कहे जा सकते हैं, इसलिए वस्तुमें 'अवक्तव्य' नामका धर्म प्राप्त होता है, कि जो 'अवक्तव्य' धर्म 'अवक्तव्य' शब्दसे कहा जाता है।

छठा वचन-प्रचार—" अमुक अपेक्षासे घट नित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सातवां वचन-प्रचार—" अमुक अपेक्षासे घट नित्य, अनित्य होनेके साथ ही अवक्तव्य भी है।"

सामान्यतया, घटका तीन तरहसे-नित्य, अनित्य और अवक्तव्यरूपसे-विचार किया जा चुका है। इन तीन वचनप्रकारोंको उक्त चार वचन-प्रकारोंके साथ मिला देनेसे सात वचन-प्रकार होते हैं। इन सात वचन-प्रकारोंको जैन 'सप्तभंगी' कहते हैं। 'सप्त' यानी सात, और 'भंग' यानी वचनप्रकार। अर्थात् सात वचन-प्रकारके समूहको सप्तभंगी कहते है। इन सातों वचन-प्रयोगोंको भिन्न भिन्न अपेक्षासे-भिन्न भिन्न दृष्टिसे समझना चाहिऐ। किसी भी वचनप्रकारको एकान्त दृष्टिसे नहीं मानना चाहिए। यह बात तो सरलतासे समझमें आ सकती है कि, यदि एक वचन-प्रकारको एकान्तदृष्टिसे मानेंगे तो दूसरे वचनप्रकार असत्य हो जायँगे*।

---

* " सर्वत्रोऽऽयं ध्वनिर्विधिप्रतिषधाभ्यां स्वार्थमभिदधानः सप्तभङ्गीमनुगच्छति।"

" एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशाद् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्काराङ्कितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभङ्गी।"

" स्यादस्त्येव सर्वम् इति विधिकल्पनया प्रथमो भङ्गः।"

" स्याद् नास्त्येव सर्वम्, इति निषेधकल्पनया द्वितियः।"

" स्यादस्त्येव स्याद्नास्त्येव, इति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया तृतीयः।"

यह सप्तभंगी (सात वचनप्रयोग) दो भागोंमें विभक्त की जाती है। एकको कहते है ' सकलादेश ' और दूसरेको ' विकलादेश '। " अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" इस वाक्यसे अनित्य धर्मके साथ रहते हुए घटके दूसरे धर्मोंका बोध करानेका कार्य 'सकलादेश' करता है। 'सकल' यानी तमाम धर्मोंको ' आदेश ' यानी कहनेवाला। यह ' प्रमाणवाक्य ' भी कहा जाता है। क्योंकि प्रमाण वस्तुके तमाम धर्मोंको विषय करनेवाला माना जाता है। " अमुक अपेक्षासे घट अनित्य ही है।" इस वाक्यसे घटके केवल 'अनित्य' धर्मको बतानेका कार्य ' विकलादेश ' का है। ' विकल ' यानी अपूर्ण। अर्थात् अमुक वस्तुधर्मको ' आदेश ' यानी कहनेवाला ' विकलादेश ' है। विकलादेश 'नय'–वाक्य माना गया है। ' नय ' प्रमाणका अंश है। प्रमाण सम्पूर्ण वस्तुको ग्रहण करता है; और नय उसके अंशको।

इस बातको तो हरेक समझता है कि, शब्द या वाक्यका कार्य अर्थबोध करानेका होता है। वस्तुके सम्पूर्ण ज्ञानको 'प्रमाण'

" स्याद्अवक्तव्यमेव, इति युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थः।"

" स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति विधिकल्पनया युगपद् विधिनिषेधकल्पनया च पञ्चमः "।

" स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव इति निषेधकल्पनया युगपत् विधिनिषेधकल्पनया च षष्ठः।

" स्यादस्त्येव स्याद् नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेव, इति क्रमतो विधिनिषेधकल्पनया युगपत विधिनिषेधकल्पनयो च सप्तमः।"

––प्रमाणनयतत्वालोकालंकार।

कहते हैं और उस ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य 'प्रमाण-वाक्य' कहलाता है। वस्तुके अमुक अंशके ज्ञानको 'नय' कहते हैं और उस अमुक अंशके ज्ञानको प्रकाशित करनेवाला वाक्य 'नयवाक्य' कहलाता है। इन प्रमाणवाक्यों और नयवाक्योंको सात विभागोंमें बांटनेहीका नाम 'सप्तभंगी' है*

---

* यह विषय अत्यंत गहन है; विस्तृत है। **'सप्तभंगीतरंगीणी'** नामा जैन तर्कग्रंथमें इस विषयका प्रतिपादन किया गया है। **'सम्मतिप्रकरण'** आदि जैन न्यायशास्त्रोंमें इस विषयका बहुत गंभीरतासे विचार किया गया है।

ले०

(अनुवादक)

" नित्यत्वादि स्वभावमाह "

" तत्त्वार्थे–तद्भावाऽव्ययं नित्यम् "

तत्वार्थसूत्रसे नित्य स्वभाव कहते हैं. वस्तुमें जिस धर्मका पलटन स्वभाव नहीं है. अर्थात् यथार्थ रूपसे रहे उसको नित्य स्वभाव कहते हैं. नित्य स्वभावके दो भेद हैं. यथा—

एका अप्रच्युति नित्यता द्वितीया पारं पर्य नित्यता ॥ तथा द्रव्याणां ऊर्ध्वप्रचय तिर्यग्प्रचयत्वेन तदेव द्रव्यमिति ध्रुवत्वेन नित्यस्वभावः नवनवपर्यायपरिणामनादिभिः उत्पत्तिव्ययरूपो नित्यस्वभावः उत्पत्तिव्ययस्वरूपमनित्यम् ।

अर्थ—एक प्रच्युतिनित्यता और दूसरी पारंपर्य नित्यता. जो द्रव्य उर्ध्वप्रचय, तिर्यग् प्रचयत्वरूपसे स्वद्रव्यपने ध्रुव हो। उसको अप्रच्युति नित्यस्वभाव कहते हैं। नवनवा पर्याय परिणामनादि उत्पत्ति व्ययरूप नित्य स्वभाव है. तथा उत्पत्ति विनास स्वरूप अनित्य स्वभाव है.

विवेचन—नित्यस्वभावके दो भेद है. (१) अप्रच्युति नित्यता (२) पारंपर्य नित्यता. अप्रच्युति नित्यता उसको कहते हैं जो द्रव्य उर्ध्वप्रचय, तिर्यग्प्रचयपने परिणत होते हुवे भी यह द्रव्यवही है ऐसी ध्रुवतारूप ज्ञान हो अर्थात् तीनों कालमें स्वस्व-

रूपपने रहे. याने मूलस्वभावको न पलटे वह अप्रच्युति नित्यता हैं। जो पहले समय द्रव्यकी परिणती थी वह दूसरे समय नये पर्यायके उत्पन्न होनेसे और पूर्व पर्यायके व्ययसे सब पर्यायोंका परिवर्तन होनेपर भी यह द्रव्यवही है ऐसा जो ध्रुवात्मक ज्ञान हो उसको उर्ध्वप्रचय कहते हैं यह उर्ध्व समयग्राही है।

तथा—सब जीव अनन्त है और जीवत्व सत्तासे सब तुल्य है तथापि भिन्न जीव सत्तारूप ज्ञानको तिर्यग् प्रचय कहते हैं। कारणसे कार्य उत्पन्न हो यह नित्य स्वभावका धर्म है. तथा जिस कारणसे जो कार्य उत्पन्न हुवा. फिर दूसरे कारणसे दूसरा कार्य इस तरह पूर्वापर नये नये कार्यके उत्पन्न होनेपर भी जीव वही है ऐसा जो ज्ञान हो और परंपरा रूप संतति चलती रहे उसको पारंपर नित्यता कहते हैं. जैसे प्रथम शरीरके कारणसे राग था. वह राग धन वस्त्रादिके कारणसे तत् प्रत्ययि राग अर्थात् कारणकी नवीनतासे रागकी नवीनता हुई. परन्तु रागरहित आत्मा नहीं हुवा ऐसी जो परंपरा उसको पारंपर्य नित्यता कहते है. इसका दूसरा नाम संतति नित्यता भी है। तथा कारण योग. या. निमितसे उत्पन्न हुवे नवीन २ पर्यायोंकी परिणमनतासे अर्थात् पूर्वपर्यायके व्यय, अभिनव पर्यायके उत्पादको अनित्य स्वभाव कहते हैं. अथवा उत्पति, विनास स्वभावको अनित्य स्वभाव कहते हैं।

तत्र नित्यत्वं द्विविधं कूटस्थप्रदेशादिनां, परिणामित्वं ज्ञानादि गुणानां, तत्रोत्पादव्ययावनेकप्रकारौ तथापि किञ्चि-

ल्लिख्यते विस्रसाप्रयोगजभेदाद् द्विभेदो सर्वद्रव्याणां चलन सहकारादि पदार्थ क्रियाकारणं भवत्येव ।

अर्थ—नित्य स्वभावके दो भेद है. (१) कूटस्थ—प्रदेशादि-भेद से (२) परिणामिक—ज्ञानादि गुणों के भेदसे. ये दोनो भेद उत्पाद व्यय रूपसे अनेक प्रकारके हैं. तथापि किंचितलिखते हैं—विस्रसा, प्रयोगज भेद से दो प्रकार के हैं । सब द्रव्यों में चलन सहकारादि रूप क्रिया के कारणसे होते हैं ।

विवेचन—अन्य ग्रन्थों में नित्यपना दो प्रकारसे कहा है. (१) कूटस्थ नित्यता (२) परिणामी नित्यता । जीवके असंख्याते प्रदेश संख्यापने तथा आकाशप्रदेशका क्षेत्रावगाह और गुणके अ-विभाग पर्याय नहीं पलटते यह कूटस्थ नित्ययता है.

ज्ञानादिगुण सब परिणामिक नित्यतारूप है. क्यौंकि गुणका धर्म हीं ऐसा है जो समय समय कार्यरूपसे परिणत होता है. इस लिये ज्ञानादिगुण परिणामिक नित्यतापने है. अगर इनको कूटस्थ नित्यतापने मान लेंतो ? पहले समय जो ज्ञानसे जाना वहीं जा-नपना सर्वदा रहेगा परन्तु ऐसा नहीं होता. और ज्ञेय (जानने योग्य वस्तु ज्ञेय है) नवीन भावसे नित्य परिणत होता है उस न-वीन अवस्थाको ज्ञान नहीं जान शक्ता इससे ज्ञानगुणकी अयथार्थता प्रतीत होती है. और ज्ञेय जो घट पटादि जैसे पलटते हैं. उसको यथावत् जाने वही यथार्थ ज्ञान है. वास्ते ज्ञानगुण उन्न नवीन २ ज्ञेयको जाने यह परिणामिक नित्य स्वभाव है । इस

तरह नित्यानित्य स्वभावी सबगुण है. वह सब द्रव्योंमें अपनी २ क्रियाका कारण होता है.

तत्र चलनसहकारित्वं कार्यं धर्मास्तिकायं द्रव्यस्यप्रतिप्रदेशस्थचलनसहकारिगुणा विभागाः उपादानकारणं कार्यस्यैव कार्यपरिमनात् तेन कारणत्वपर्यायव्ययः कार्यत्वपरिणामस्योत्पादः गुणोत्वं ध्रुवत्वं प्रतिसमयं करणस्यापि उत्पादव्ययौ कार्यस्याप्युत्पादव्ययावित्यनेकान्तजयपताकाग्रन्थे एवं सर्वद्रव्येषु सर्वेषां गुणानां स्वस्वकार्यकारणात् ज्ञेया इति प्रथमव्याख्यानम् ॥

अर्थ—जैसे-धर्मास्तिकायका चलनसहकारीपना मुख्य कार्य है. अधर्मास्तिकायका स्थिरसहायिपना मुख कार्य है. आकाशद्रव्य का अवगाहदान मुख्य कार्य है. जीवका जानपना, देखना रूप उपयोग मुख्य कार्य है और पुद्गल का वर्ण गंध रस स्पर्श मुख्य कार्य है इत्यादि स्वकार्यका उत्पन्न होना हीं भवन धर्म है और जो भवन धर्म है वही उत्पाद है और उत्पाद. व्यय सहित होता है. इस तरह भवन धर्मका स्वरूप तत्वार्थ सूत्र में कहा है।

उत्पाद, व्यय दो प्रकार से होता है (१) प्रयोगसा (२) विश्रसा यह परिणामिक और स्वाभाविक धर्मसे होता हैं. स्वाभाविक उत्पाद व्यय का स्वरुप कहते है. धर्मास्तिकायादि छे द्रव्यों में अपने २ चलन सहकारादि गुणोंकी प्रवृत्तिरूप अर्थ क्रिया होती है. और चलनसहकारित्व धर्म धर्मास्तिकाय के प्रतिप्रदेशमें रहा

हुवा है. वही चलन सहकारादि गुणविभाग उपादान कारण है और वही कार्यरूपसे परिणमन होता है. इसी लिये कारणताका व्यय कार्यता का उत्पाद और चलनसहकारीत्व धर्म ध्रुव है. इसी तरह अधर्मास्तिकायमें स्थिर सहाय गुण की प्रवर्तना, आकाशास्तिकाय में अवगाह, गुणकी प्रवर्तना, पुद्गलास्तिकायमें पूरण गलनादि गुणकी प्रवर्तना और जीव द्रव्यमें ज्ञानादि गुण की प्रवर्तना होती है। अनेकान्तजयपताका ग्रन्थमें ऐसा भी लिखा है कि गुणमें प्रतिसमय कारणपना नया नया उत्पन्न होता है. अर्थात् कारणपनेका उत्पाद व्यय है. और कारणवत् कार्यता का भी उत्पाद व्यय होता है. इसी तरह सब द्रव्यों के प्रत्येक गुणमें कार्य कारणता का उत्पाद व्यय होता है यह उत्पाद व्यय की प्रथम व्याख्या कही।

तथाच सर्वेषां द्रव्याणां परिणामिकत्वं पूर्वपर्यायव्ययः नवपर्यायोत्पादः एवमप्युत्पादव्ययौ द्रव्यत्वेन ध्रुवत्वं इति द्वितीयः।

अर्थ--सर्व द्रव्यों में परिणामिकभावसे पूर्वपर्याय का व्यय और नवीन पर्याय का उत्पाद ऐसा उत्पाद व्यय समय २ होता है तथा द्रव्यपने ध्रुव है यह दूसरा भेद कहा।

प्रतिद्रव्यं स्वकार्यकारणपरिणामनपरावृत्तिगुणप्रवृत्तिरूपा परिणतिः अनन्ता अतीता एका वर्तमाना अन्या अनागता योग्यतारूपास्ता वर्त्तमाना अतीता भवन्ति अनागता वर्त्तमाना भवन्ति शेषा अनागता कार्ययोग्यतासन्नता लभन्ते इत्येवंरूपा-

वुत्पादव्ययौ गुणत्वेन ध्रुवत्वं इति तृतीयः । अत्र केचित् कालापेक्षया परप्रत्ययत्वं वदन्ति तदसत् कालस्य पञ्चास्तिकायपर्यायत्वनैवाऽऽगमे उक्तत्वादियं परिणतिः स्वकालत्वेन वर्तनात् स प्रत्यक्षं एवं तथा कालस्य भिन्नद्रव्यत्वेपि कालस्य कारणता अतीता अनागत वर्तमान भवनं तु जीवादिद्रव्यस्यैव परिणतिरिति ॥

अर्थ—प्रत्येक द्रव्य में स्वकार्य कारणरुप पारिणमन है वह परावृत्ति–पलटनगुण प्रवृत्तिरुप है. ऐसी परिणति अतीत काल में अनंती हो गई, वर्तमान काल में एक है और दूसरी अनागत योग्यतारुप अनन्ती है। वर्तमान परिणति अतीत होती है अर्थात् उस परिणति में वर्तमानता का व्यय, अतीतपने का उत्पाद और परिणतिरूप से ध्रुव है. और अनागत परिणति जो वर्तमान होती है वहां अनागतपने का व्यय, वर्तमानता का उत्पाद और आस्तिरुप से ध्रुव है. शेष अनागत कार्य की योग्यता जो दूर थी वह समीपता को प्राप्त होती है, अर्थात् दूरता का व्यय और समीपता का उत्पाद तथा अतीत में संमिलित हुई वहां दूरता का उत्पाद और समीपता का व्यय इसी तरह सब द्रव्यों में अतीत, अनागत, वर्तमान रुप परिणति हमेशां होती है. यह गुणपने उत्पाद, व्यय और द्रव्यरूप से ध्रुव इस तरह उत्पाद व्यय का तीसरा भेद कहा।

कितनेकाचार्य इसको काल की अपेक्षा ग्रहण करके पर प्रत्ययि कहते है. यह अयुक्त हैं. क्यो कि काल द्रव्य पंचास्तिकाय

की पर्याय है. और परिणति द्रव्य का स्वधर्म है. और स्वकालरूप वस्तु का परिणाम भेद वही स्वरुप काल है. अगर काल को भिन्न द्रव्य मानते है तो भी काल है वह कारणरुप है और अतीत, अनागत वर्तमानरूप परिणति है वह जीवादि द्रव्य का धर्म है. इस वास्ते यह उत्पाद व्ययभी स्वाभाविक है ।

तथा च सिद्धात्मानि केवलज्ञानस्य यथार्थ ज्ञेयज्ञायकत्वात् यथा ज्ञेया धर्मादि पदार्थाः तथा घटपटादिरूपा वा परिणमन्ति तथैव ज्ञाने भासनाद् यस्मिन् समये घटस्य प्रतिभासः समयान्तरे घटध्वंसे कपालादि प्रति भासः तदा ज्ञाने घटा प्रतिभासध्वंसः कपाल प्रति भासस्योत्पादः ज्ञानरुपत्वेन ध्रुवत्वमिति तथा धर्मास्तिकाये यस्मिन् समये संख्येयपरमाणुनां चलनसहकारिता अन्य समये असंख्येयानां एवं संख्येयत्वसहकारिताव्ययः असंख्येयानन्तसहकारिता उत्पादः चलन सहकारित्वे धुवत्वं एवम धर्मादिष्वपि ज्ञेयं एवं सर्वगुणप्रवृत्तिषु इति चतुर्थः ॥

अर्थ—सिद्धात्मा में केवलज्ञान गुण सम्पूर्णरुप से प्रगट है. वे जिस समय जो ज्ञेय जिस भावसे परिणत होता है । उसी समय यथा रुप से जानते है. जैसे धर्मादि द्रव्य तथा घटपटादि ज्ञेयपदार्थ जिस प्रकार से प्रणमन करते है उसीरुप में केवलज्ञान जानता है. जिस समय घट ज्ञान था वह समयान्तर घट ध्वंस होनेपर कपालज्ञान हुवा उस समय घट प्रतिभास का ध्वंस, कपाल

प्रतिभास का उत्पाद और ज्ञानरूप से ध्रुव इसी तरह दर्शनादि सब गुणों का प्रवर्तन समझ लेना।

जिस समय धर्मास्तिकाय संख्यातप्रदेश परमाणु का चलन-सहकारी था वह फिर समयान्तर असंख्यात परमाणु को चलन-सहकारी है. तब संख्यात परमाणु के चलनसहकारीपने का व्यय और असंख्यात, अनन्त परमाणु के चलनसहकारपने का उत्पाद है तथा चलनसहकारी गुणरूप से ध्रुव है.

इसी तरह अधर्मास्ति कायादि में सब गुणों की प्रवृत्ति होती है इस रीति से द्रव्य में अनन्त गुण की प्रवृत्ति है।

प्रश्न—धर्मास्तिकाय के चलनसहकार गुण में अनन्त जीव और अनन्त पुद्गल परमाणु की चलनसहकारीता हैं. और जब वह संख्यात, असंख्यात. जीव, परमाणुओं को चलनसहकारिता पने प्रवर्तमान है उस समय वह कोनसा गुण है जो अप्रवर्तमान रूप से रहा हुवा है।

उत्तर—जो निरावर्ण द्रव्य है उसके गुण अप्रवर्तन नहीं रहते. किन्तु—चलन सहकारी गुण के सब पर्याय जिस समय जितने जीव, पुद्गल परमाणु आवे उस सब को चलन सहकारीता पने होते है. क्यों कि अलोकाकाश में जो अवगाहक जीव, पुद्गल नहीं है तो भी अवगाहक दानगुण तो प्रवर्तमान ही है. इसी तरह धर्मास्तिकायादि में भी न्यूनाधिक जीव, पुद्गल के प्राप्त होने

पर गुण के सब पर्याय प्रवर्तमान होते है। यह गुणपर्याय के उत्पाद, व्याय, ध्रुव का चोथा स्वरुप कहा.

तथा सर्वे पदार्थाः अस्तिनास्तित्वेन परिणामिनः तत्रास्ति भावानां स्वधर्माणां परिणामिकत्वेन उत्पादव्ययौ स्तः नास्ति भावानां परद्रव्यादिनां परावृतौ नास्तिभावानां परावृत्तित्वेनाप्युत्पादव्ययौ ध्रुवत्वं च अस्तिनास्ति द्वयो इति पञ्चमः।

अर्थ—सब द्रव्य आस्तिनास्तिरुप दो स्वभाव परिणामी है. स्वद्रव्यादि ग्राही अस्तिस्वभाव है. जिस समय ज्ञानगुण घट जानता है उस समय घट ज्ञान की आस्तिता है. और घट ध्वंस होने पर कपालज्ञान हुवा उस समय घट ज्ञान के अस्तिता का व्यय और कपालज्ञान के अस्तिता का उत्पाद यह आस्तिता का उत्पाद व्यय कहा। इसी तरह नास्तिताका का भी उत्पाद व्यय समझ लेना।। पर द्रव्य के पलटने से नास्तिता पलटती है और स्वगुण परिणामिक कार्य के पलटने से अस्तिता पलटती है. जहां पलटन–परिवर्तन भाव है वहां उत्पाद व्यय होता है. इस तरह सब द्रव्यों में सामान्य भाव से सब धर्म है. जिस पदार्थ में जैसा संभव हो वैसा जिन आगम को आबाधित पने उपयोग पूर्वक उत्पाद, व्यय का स्वरुप कहना. आस्तिनास्तिपने ध्रुव है यह पांचवां अधिकार कहा।

तथा पुनः अगुरुलघुपर्यायाणां षडगुणहानिवृद्धिरुपाणां प्रतिद्रव्यं परिणामनात् नानाहानिव्ययेवृद्धयुत्पादः वृद्धिव्यये

हान्युत्पादः ध्रुवत्वं चागुरुलघुपर्याणां एवं सर्व द्रव्येषु ज्ञेय "तत्वार्थवृत्तौ" आकाशाधिकारे यत्राप्यवगाहकजीवपुद्गलादिर्नास्ति तत्राप्यगुरुलघुपर्यायवर्तनयावश्यत्वे चानित्यताभ्युपेया ते च अन्ये अन्ये च भवन्ति अन्यथा तत्र नवोत्पादव्ययौ नापेक्षिकाविति न्युनएवं सल्लक्षणंस्यात् इति षष्ठः ॥

अर्थ—सर्व द्रव्य और पर्याय अगुरुलघु धर्म संयुक्त होते है. प्रत्येक द्रव्य के प्रतिप्रदेश में अगुरुलघु धर्म अनन्त है. वह प्रदेश या पर्याय में किसी समय हानि और किस समयवृद्धि को प्राप्त होता है. हानि, वृद्धि के छे छे भेद है. जिसका स्वरुप आगे लिख चुके है. जैसे—परमाणु में वर्णादि की हानि, वृद्धि होती है उसी तरह अगुरुलघु की भी हानिवृद्धि होती हैं. जब हानिका व्यय है तब वृद्धि का उत्पाद है. या वृद्धि का व्यय है तो हानि का उत्पाद है, परन्तु अगुरु लघुता ध्रुव है. इसी तरह सब द्रव्यों में समझ लेना।

तत्वार्थ की टीका में आकाश द्रव्य के अधिकार में लिखा है कि अलोकाकाश में अवगाहक जीव पुद्गलादि द्रव्य नहीं है परन्तु वहां भी अगुरूलघु पर्याय अवश्य है. और अनित्यता भी अंगीकार करते है. वह अगुरूलघु पर्याय तथा प्रदेश में भिन्न भिन्न रूप से है पूर्व समय अगुरूलघु का व्यय और दूसरे समय नये अगुरूलघु का उत्पाद है. अगर इस तरह उत्पाद व्यय की गवेषणा न की जाय तो अलोक में सत्लक्षण की न्यूनता होती

है. "उत्पाद व्यय ध्रव युक्तंसत्" द्रव्य सत् लक्षण युक्त माना है इस लिये अगुरूलघु का परिणमन सब द्रव्य, प्रदेश और पर्यायों में है. यह अगुरूलघु का उत्पाद व्यय कहा इति छट्ठा अधिकार।

तथा भगवती टीकायां तथा च अस्तिपर्यायतः सामर्थ्यरूपाविशेष पर्यायास्ते चानन्तगुणास्ते प्रतिसमयंनिमित्तभेदे नपरावृत्तिरूपाः तत्र पूर्वविशेषपर्यायाणां नाशः अभिनव विशेष पर्यायाणामुत्पादः पर्यायत्वे ध्रुवत्वं इत्यादि सर्वत्र ज्ञेयं इति सप्तमः ॥

अर्थ—भगवतीसूत्र की टीका में कहा है कि अस्तिपर्याय से विशेषरूप सामर्थपर्याय अनन्तगुण है. अस्तिपर्याय ज्ञानादि गुण का अविभागरूप पर्याय है. जो उस प्रत्येक पर्याय में सर्व ज्ञेय जानने का सामर्थ है वह विशेष पर्याय है. तथा च महाभाष्ये "यावन्तो ज्ञेयास्तावन्तो ज्ञानपर्यायाः" इसी को सामर्थ पर्याय कहते हैं. सामर्थ पर्याय ज्ञेय की निमितता से है. ज्ञेय अनेक प्रकार से उत्पन्न होता है और अनेक प्रकार से विनाश होता है उसी तरह पर्याय भी पलटता है. वह प्रति समय निमित भेद की परावृत्ति होने से पूर्व विशेष पर्याय का विनास और अभिनव विशेष पर्याय का उत्पाद हुआ करता है और पर्यायरूय से अस्तिता ध्रुव है इस तरह गुण पर्याय का उत्पाद व्यय ध्रवपना कहा. इति सप्तमधिकारः यह अस्ति नास्ति स्वभाव का स्वरूप विस्तार पूर्वक कहा।

नित्यताऽभावे निरन्वयता कार्यस्य भवति कारणाभावता च भवति अनित्यताया अभावे ज्ञायकतादि शक्तेरभावः अर्थक्रियाऽसंभवः तथा समस्तस्वभावपर्यायाधारभूतभव्यदेशानां स्वस्वक्षेत्रभेदरूपाणामेकत्वपिंडीरूपापरत्यागः एकस्वभावः ॥ क्षेत्रकालभावानां भिन्नकार्यपरिणामानां भिन्नप्रभावरूपोऽनेकस्वभावः एकत्वाभावे सामान्याभावः ॥ अनेकत्वाभावे विशेष धर्माभावः स्वस्वामित्व व्याप्यव्यापकताप्यभावः

अर्थ—जैसे अस्ति नास्तिपना कहा वैसे ही नित्यता, अनित्यता भी सब द्रव्यों में है. नित्यता, अनित्यता विना कोई द्रव्य नहीं है. अगर द्रव्यमें नित्यता न हो तो कार्य का अन्वय किसको हो ? अर्थात् यह कार्य इस द्रव्यका है ऐसा नहीं कहा जा शक्ता. द्रव्य में नित्यता मानने सेंही कार्य का अन्वय होता है. अब जो द्रव्यको केवल नित्यपने हीं मानते हैं तो गुणका कार्य है वह भी द्रव्य का कहावेगा और गुण है वह द्रव्य नहीं है. फिर द्रव्यमें नित्यता के अभावसे कारणपने का अभाव होता है. इस लिये नित्यता माननी चाहिये. और द्रव्य में अनित्यता का अभाव मानने से ज्ञायकतादि गुणरूप शक्तिका द्रव्य में अभाव हो जायगा अर्थक्रिया भी संभव नहीं होती. क्योंकि किसी भी अंसमें अनित्यता मानने से ही अर्थ क्रिया होती है. नवीन कारण से कार्य उत्पन्न होता हे. वह पूर्व पर्याय के ध्वंस से ही होता है. एकका ध्वंस और दूसरे नवीन का उत्पाद यही द्रव्य का नित्यानित्यपना है. यह नित्यानित्य स्वभाव कहा ।

अब एक और अनेक स्वभाव कहते हैं. अस्तित्व, प्रमेयत्व और अगुरुलघुत्वादि समस्त स्वभाव तथा गुणविभागादि सब पर्यायों का आधारभूत क्षेत्र प्रदेश है (प्रदेश उस अविभाग को कहते है जो द्रव्यसे पृथक् न हो) वह स्वक्षेत्र भेदरूप से भिन्न २ हैं. परन्तु एक पिंडीभूत रहते हैं. उन प्रदेशों में क्षेत्रान्तर कभी नहीं होता जो अनन्त स्वभावी, अनन्तपर्यायी असंख्यात प्रदेशरूप है. उनका प्रमाण नहीं पलटता इस तरह द्रव्य में समुदायि पिंडपना रहता है उसको एक स्वभाव कहते हैं. जैसे—पंचास्तिकाय में (१) धर्मास्तिकाय (२) अधर्मास्तिकाय (३) आकाशास्तिकाय ये तीन द्रव्य एकेक हैं जीवद्रव्य अनन्त है और पुद्गल परमाणु इससे भी अनन्त हैं. एक जीव नये २ अनेक रूप धारण करता है परन्तु जीवत्वपने में अन्तर नहीं है. यह द्रव्य का एक स्वभाव कहा।

क्षेत्र से असंख्यात प्रदेश, कालसे उत्पाद व्यय और भाव से गुणके अविभाग पर्याय. वे स्वकार्य भिन्न परिणामी है. अर्थात् उन सबका प्रवाह भिन्न २ है और कार्यपना सब का भिन्न है इस लिये पर्याय भेदसे विवक्षा करने पर द्रव्य अनेक स्वभावी हैं. वस्तु में एकपने का अभाव मानने से सामान्यपना नहीं रहता तथा गुण, पर्याय का आधार कौन? और आधार बिना गुण, पर्याय जो आधेय है वह किस में रहे? इस लिये द्रव्य में एकपना मानना चाहिये. अब जो अनेकपना नहीं मानते हैं तो द्रव्य विशेष स्वभावसे रहित हो जायगा और विशेष स्वभाव से रहित होने पर गुणकी अनेकता का द्रव्य में अभाव होगा और

द्रव्यमें गुणका अनेकपना स्व, स्वामित्व और व्याप्य, व्यापक भावसे है. जैसे–गुणपर्याय. स्व–धन है. और द्रव्य उसका स्वामी है अथवा–द्रव्य व्याप्य है तथा गुण पर्याय उसमे व्यापक रूपसे हैं. इस लिये द्रव्य अनेक स्वभावी है। यह एक अनेक स्वभाव कहा।

स्व स्व कार्ये भेदेन स्वभावभेदेन अगुरुलघुपर्यायभेदेन भेदस्वभावः अवस्थानाधरताद्यभेदेन अभेदस्वभावः भेदाभावे सर्वगुणपर्यायाणां सङ्करदोषः गुणगुणी लक्ष्यःलक्षणः कार्यकारणतानाशः अभेदभावे स्थानध्वंसः कस्यैते गुणाः को वा गुणी इत्याद्यभावः।

अर्थ—अपने २ कार्य भेदसे, स्वभाव भेदसे और अगुरुलघु पर्याय भेदसे भेदस्वभाव है. जैसे–जीवका स्वकार्य भेद. ज्ञान गुणसे जानपना, चारित्र गुणसे स्थिरता रमणता और पुद्गल द्रव्य का कार्यभेद वर्ण गंध रस स्पर्श रूप भिन्नता. तथा–स्वभाव भेद– जैसे–अस्ति स्वभाव सद्भाव संबोधक है. नित्य स्वभाव–अविनासीपना, अनित्यस्वभाव–परिवर्तनरूप, एकपना–पिंडरूप और अनेकपना–प्रदेशादिका बोधक है इत्यादि स्वभाव भेद है. तथा अगुरुलघुपर्यायभेद जैसे–प्रदेश में गुणविभाग में पृथक् पृथक् है. परस्पर तुल्य नहीं है किन्तु हानि वृद्धिरूप परिणमन है इत्यादि. इस तरह वस्तुमें भेद स्वभाव रहा हुआ है।

अभेद स्वभाव कहते हैं, सब धर्मका अवस्थान अर्थात्

रहनेकी जगह और उसका आधारपना कभी भिन्न नहीं होता इस वास्ते द्रव्य में अभेद स्वभाव है।

द्रव्य, गुण, पर्यायमें भेद स्वभाव नहीं माननेसे संकरता दोषकी प्राप्ति होती है गुण गुणी, लक्ष लक्षण, कार्य कारणता का नाश होता है और कार्य भेद नहीं हो शक्ता इस वास्ते द्रव्य, गुण, पर्याय भेद स्वभावी है. चेतना लक्षण सहित जीव और अजीव चेतना रहित वे अभेदपने है. परन्तु अजीव में धर्मास्ति-काय द्रव्य चलन सहकारी है. दूसरे अजीव द्रव्यो में यह गुण नहीं है. इसी तरह अधर्मास्तिकाय स्थिर सहायगुणी है. आकाश में अवगाहन गुण है. और पुद्गल रूपी स्कंधादि परिणामी है. इस तरह सब द्रव्य भेद रूपसे भिन्न द्रव्य कहेजाते है. अनन्ते जीव सब सरीषे हैं. उन सब जीवों को एक द्रव्य क्यों नहीं कहते? उत्तर—जैसे—रूपिया चांदी रूपमें, उज्वलता और तौलपने सदस है परन्तु वस्तुरूप पिंडपने भिन्न है. इसलिये वे भिन्न कहेजाते है इसी तरह जीवकी भी भिन्नता समझ लेनी. उत्पाद व्ययका चक्र पूर्ववत है परन्तु परिवर्तन सबका एक समान नहीं हैं. और अगु-रुलघुकी हानि वृद्धि का चक्र सब द्रव्यों में अपना २ है. इसलिये सबजीव और सब परमाणु भिन्न २ है. वास्ते भेद स्वभावमयि द्रव्य है।

वस्तु में अभेद स्वभाव नहीं मानने से स्थानध्वंस होता है अर्थात् स्थान कौन स्थानमें रहनेवाला कौन इत्यादिका अभाव होता

है. इसीतरह सर्वथा एकपना मानने से गुणी गुणकी पहचान नहीं होती इसवास्ते भेदाभेद स्वभावमयी वस्तु है.

परिणामिकत्वे उत्तरोत्तर पर्यायपरिणामनरूपो भव्यस्वभावः तथा तत्वार्थवृतौ इह तुह भावे द्रव्यं भव्यं भवनमिति गुणपर्यायश्च भवनसमयस्थानमात्रका एव उत्थितासीत् कूटकजागृतशयितपुरुषवत्देवत्व वृत्यंतरव्यक्तिरूपेणोपदिश्यते, जायते अस्ति विपरिणामते, वर्द्धते, अपक्षीयते, विनश्यतीति पिण्डातिरिक्त वृत्यंतरावस्थाप्रकाशतयां तु जायते इत्युच्यते सव्यारैश्च भवनवृत्तिः अस्ति इत्यनेन निर्व्यापारात्मसताऽऽख्यायते भवनवृत्तिरूदासीनता अस्तिशब्दस्य निपातत्वात् विपरिणामते इत्यनेन निरोभूतात्मरूपस्यानुच्छिन्नतथावृत्तिकस्य रूपान्तरेण भवनं यथा क्षीरं दधीभावेन परिणाते विकरान्तरवृत्या भवनवत्तिष्ठते वृत्यन्तरव्यक्तिहेतुभाववृत्तिर्वा विपरिणामः वर्द्धत इत्यनेन तूपचयरूपः प्रवर्तते यथाङ्कुरो वर्द्धते उपचयवत् परिणामरूपेण भवनवृत्तिर्व्यज्यतै अपक्षीयते इत्यनेन तु तस्येव परिणामस्यापचयवृत्तिराख्यायते दुर्बलीभवत् पुरुषवत् पुरुषदपचयरूम भवनवृत्तिन्तरव्यक्तिरुच्यते विनश्यति इत्येननाविर्भूतभवनवृत्तिस्तिरोभवनमुच्यते तथा विनष्टो घटः प्रतिविशिष्टसमवस्थानात्मिकाभवनवृत्तिस्तिरोभूता नत्वाभावस्यैवजाता कपालाद्युत्तर भवनवृत्यन्तरक्रमाविच्छिन्नरूपत्वादित्येवमादिभिराकारैर्द्रव्यार्ययेव भवनलक्षणान्यपदिश्यन्ते, त्रिकालमूलावस्थाया अपरि-

त्यागरूपोऽभव्यस्वभावः, भव्यत्वाभावविशेषगुणानामप्रवृत्तिः अभव्यत्वाभावे द्रव्यान्तरापत्तिः ॥

अर्थ—भव्य तथा अभव्य स्वभाव कहते हैं. जीवाजीवादि सब द्रव्य परिणामि है. वे प्रतिसमय नवीन २ भाव को प्राप्त होते हैं. जहां पूर्वपर्याय का व्यय और उत्तर पर्याय का उत्पाद ऐसी जो परिणती उस का मुख्य कारण भव्य स्वभाव है. तत्वार्थ टीका में कहा है द्रव्यानुयोग भावधर्मसे अर्थात् द्रव्यमें गुणपर्याय हैं. वे भव्य स्वभावी हैं. यह भवन धर्म हुवा (सव्यापारैभवनवृत्ति) व्यापार सहित क्रियाको भवन धर्म कहते हैं.

वस्तु के गुणपर्याय है वे भवन समयवस्थान रूप है अर्थात् नवीनता संप्राप्तरूप हैं. जैसे—विवक्षित पुरुष उठता है. फिर वही बैठता है. जागता है सोता है इत्यादि पर्याय प्रक्रिया पुरूष प्रत्ययि होती है. इसीतरह वृत्त्यन्तर अर्थात् पूर्वपर्याय का नाश उत्तरपर्याय का उत्पन्न होना उसको वृत्त्यन्तर कहते हैं. वृत्त्यन्तर व्यक्तिरूप-पने उपदेशक है. उसको भवन धर्मकी प्रवृत्ति कहते हैं.

नवीन उत्पन्न होना, अस्तिपने रहना, विपरीतरूप से परि-णमन होना. या समर्थ धर्मसे वृद्धि होना, अपक्षियते=घटना, विनश्यति=विनाश होना, पिंड=समुदाय. इससे अतिरिक्त गुणकी प्रवृत्यन्तर अवस्था के प्रगट होनेसे भवन धर्म होता है. भवनवृत्ति सव्यापार है किन्तु निर्व्यापार नहीं है।

अस्ति यह वचन निर्व्यापार आत्मशक्ति का अवबोधक है यह भवन वृत्ति से उदासीन है. अर्थात्—भवन वृत्ति को ग्रहण नहीं करता. विपरिणमते इस वाक्य से नहीं प्रगट हुई जो आत्मशक्ति उसका रूपान्तर होना यह भवनधर्म है. जैसे—दुग्ध दधिभाव से परिणमता है इस तरह विकारान्तर होना उसको भवन धर्म कहते हैं. जिस ज्ञानादि पर्याय में अनन्त ज्ञेय जानने की शक्ति हैं परन्तु ज्ञेय जिस तरह परिणमता है उसी तरह ज्ञानगुणका प्रवर्तन विपरिणामपने प्रति समय प्रवर्तमान होता है. यह भी भवनधर्म है. पुनः वृत्यन्तरवर्तना अन्य व्यक्ति के हेतु से भवान्तरपने वर्ते उसको विपरिणाम भवन धर्म कहते हैं. फिर वर्द्धते इस वचन से उपचयरूप से प्रवर्ते जैसे—अंकुर वृद्धि को प्राप्त होता है इसी तरह वर्णादि पुद्गल के गुण वृद्धि को प्राप्त होते है उस को उपचयरूप भवनवृत्ति कहते हैं. ।

इसी तरह गुण का कार्यान्तर परिणमन वही द्रव्य का भवन धर्म है. " अपक्षियते " उसी परिणाम का न्यून होना. दुर्बल होता हुवा पुरूष की तरह. जैसे पुरुष दुर्बल होता है वैसे पर्याय के घटने से द्रव्य तथा अगुरु लघु पर्याय के घटने से द्रव्य की दुरबल वृत्ति को क्षयरूप भवन धर्म कहते हैं. " विनश्यति " इसी तरह विनाशरूप भवन धर्म इत्यादि अनेक प्रकार से वस्तु में भवन धर्म है इस को भव्य स्वभाव भी कहते है. तथा—अस्तित्व वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरु लघुत्वादि धर्म जो तीनों काल में अपनी मूल अवस्था को नहीं छोडते. वह उन का अभव्य स्वभाव है.

जैसे—अनेक प्रकार से उत्पाद व्यय के परिणमन होते हुवे भी जीवका जीवत्वपना नहीं बदलता ऐसे ही अजीव का अजीत्वपना नहीं पलटता यह सब अभव्य स्वभाव का धर्म है. ।

ये दोनों स्वभाव नहीं मानने से कौन से दोष की उत्पत्ति होती है वह बतलाते हैं. द्रव्य में भव्य स्वभाव नहीं मानने से द्रव्य का जो विशेष गुण. गति सहकार, स्थिति सहकार, अवगाहदान, ज्ञायकता, वर्णादि पंचास्तिकाय के गुण है उन की प्रवृत्ति नहीं होती और विना प्रवृत्ति के कार्य सिद्ध नहीं होती और कार्य सिद्धि विना द्रव्य व्यर्थ है इस लिये भव्य स्वभाव मानना चाहिये ।

अगर द्रव्य में अभवनरूप अभव्य स्वभाव न हो और केवल भवन स्वभाव ही हो तो सब धर्म परिवर्त्तनरूपता को प्राप्त होवेंगे और एक द्रव्य दुसरे द्रव्य में मिल जायगा तथा द्रव्यत्व, सत्त्व, प्रमेयत्वादि अभव्य धर्म का नाश होता है इस वास्ते द्रव्य में अभव्य स्वभाव भी है ।

वचनगोचरा ये धर्मास्ते वक्तव्याः, इतरे अवक्तव्याः। तत्राक्षराः संख्येयाः तत्सन्निपाता असंख्येयाः तद्गोचरा भावाः भावश्रुतगम्याः अनन्तगुणाः वक्तव्यभावे श्रुताग्रहणत्वापत्ति अवक्तव्यभावे अतीतानागतपर्यायाणां कारणतायोग्यतारूपाणामभवः सर्वकार्याणां निराधारताऽऽपत्तिश्च सर्वेषां पदार्थानां ये विशेषगुणाश्चलनस्थित्यवगाहसहकारपुरणगलनचेतनादयस्ते—

परमगुणाः शेषः साधारणाः साधरणासाधारणगुणास्तेषां तदनुयायीप्रवृत्तिहेतुः परमस्वभावः इत्यादयः सामान्य स्वभावः।

अर्थ—आत्मा का वीर्य गुण जो वीर्यान्तराय कर्म से आच्छादित है. उस वीर्यान्तराय के क्षयोपशम या क्षय होने से प्रगट हुवा जो वीर्य धर्म उस को भाषा पर्याप्ति नामकर्म के उदय से भाषा वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर के शद्धपने प्रयोग करते हैं. वे शद्ध पुद्गल स्कंध हैं. परन्तु श्रोताजनों के लिये वे ज्ञान के हेतु हैं, जिस में गुण नहीं वह गुण का कारण नहीं होता ऐसा जो कहते हैं वे मिथ्या है, क्यों कि जो निमित कारणरूप है उस में गुण हो किंवा न भी हो परन्तु उपादान कारण में उस गुण की योग्यता निश्चय है, और जो वस्तुधर्म वचनयोग से ग्रहण होने योग्य है उस को वक्तव्य धर्म कहते हैं, और इस से इतर जो धर्मास्तिकाय में अनेक धर्म ऐसे हैं; वे वचन से अग्राह्य हैं; वे सब धर्म अवक्तव्य कहे जाते हैं, वक्तव्य धर्म से अवक्तव्य धर्म अनन्तगुण हैं; वचन तो संख्याते हैं; परन्तु उन वचनों में ऐसा सामर्थ्य है कि सब अवक्तव्य धर्म का भी ज्ञान होता है; उक्तं च–अभिलापा जे भावा अणंत भागो य अण अभिलाप्पाणं अभिलाप्य साणंतो भाग सु ए निवंद्धोअ ॥ १ ॥ तत्र अक्षर संख्यात हैं. उन अक्षरों के सन्निपात संयोगी भाव असंख्यात हैं. उन सन्निपात अक्षरों से ग्रहण करनेयोग्य जो पदार्थादि के भाव वे अनन्त गुण है. उससे अवक्तव्य भाव अनन्त गुण है. मतिज्ञान, श्रतिज्ञान अभिलाप्य भावका परोक्षग्राहक हैं. अवधिज्ञान पुद्गल को प्रत्यक्ष प्रमाण से

जाननेवाला है. परन्तु एक परमाणु के सब पर्यायों को नहीं जानता किन्तु कितनेक पर्यायों को जानता है. और कालसे असंख्यात समय जानता है. केवलज्ञान छओं द्रव्य के सब पर्यायों को एक समय प्रत्यक्षरूप से जानता है इसालिये द्रव्यमें वक्तव्यता धर्म न होंतो श्रुतज्ञान से ग्रहण नहीं हो सक्ता और इसके बिना ग्रन्थाभ्यास, उपदेशादि सब नहीं हो सके इसलिये द्रव्यमें वक्तव्य स्वभाव है।

अवक्तव्य स्वभाव नहीं मानते हैं तो ? वस्तुमें अतीत पर्याय जो कारणता की परंपरा में रही है. तथा अनागत पर्याय सब योग्यता में रही है. उन सबका अभाव होता है. जिस समय वस्तु में वर्तमान पर्याय की अस्ति है. उससे अतीत, अनागत का ज्ञान नहीं होता इसलिये अवक्तव्यस्वभाव अवश्य मानना चाहिये. नहीं तो वर्तमान सब कार्य निराधार हो जायगा. और द्रव्य में एक समय अनन्ते कारण हैं. वे कारण अनन्त कार्य धर्मरूप हैं. अनन्त कार्य के अनन्त कारण उसका परंपर ज्ञान केवलीको हैं. वर्तमान कारण धर्म तथा कार्य धर्मसे अनन्त गुण कारण, कार्यकी योग्यता रूप सत्ता में है. वे किसी के अविभाग नहीं है. किन्तु अविभागी ज्ञानादिगुण में अनन्त कारण, कार्य धर्म उत्पन्न होने की योग्यता रूप सत्ता है. वह सब अवक्तव्य रूप है।

अब परम स्वभाव का स्वरूप कहते हैं. सब धर्मास्तिकायादि पदार्थ के विशेषगुण–जैसे–धर्मास्तिकाय का चलनसहकारीपना, अधर्मास्तिकायका स्थिरसहकारीपना, आकाशास्तिकाय का

अवगाहकदान, पुद्गलास्तिकायका पुरण गलनपना और जीव द्रव्य का चेतनता लक्षण ये सब द्रव्यों का विशेष गुण है. ऐसे लक्षण जो दूसरे द्रव्यको भिन्न करने के लिये मूल कारण हो वह परम-प्रकृष्ट गुण हैं. वे गुण भी पंचास्तिकाय में मिलते हैं. यथा-अविनाशीत्व, अखंडत्व, अनित्यत्वादि धर्म पंचास्तिकाय में शहस रूपसे हैं. इस वास्ते इनको साधारण गुण कहते हैं. तथा-पंचास्तिकाय के किसी द्रव्यमें कोई गुण मिले और किसी में नमिले उसको साधारणअ-साधारण गुण कहते है. सव गुण विशेष गुण के अनुयायि वर्तते हैं. इस प्रवर्तना का कारण द्रव्य में परमस्वभभाव पना है. परमस्व-भाव के परिणमनसे द्रव्यके सब गुण मुख्य गुण के अनुयायिपने प्रवर्तमान होते हैं. यह परमस्वभाव सब द्रव्यों में है. इस तरहसा-मान्य स्वभावका स्वरूप कहा. फिर अनेकान्तजयपताका में कहा है।

तथास्तित्व, नास्तित्व कर्तृत्व, भोक्तृत्व, असर्वगतत्व, प्रदेश वत्त्वादिभावाः पुनः तत्वार्थ टीकायां पुनरप्यादिग्रहणं कुर्वन् ज्ञापयत्यत्रानन्तधर्मवत्त्वं तत्रासक्ताः प्रस्तारयन्तु सर्वे धर्माः प्रतिपदं प्रवचनत्वेन पुंसा यथासंभवमायोजनीयाः क्रियावत्त्वं पर्यायोपयोगिता प्रदेशाष्टकनिश्चलता एवं प्रकाराः संति भूयांसः अनादिपरिणामिका भवन्ति जीवस्वभावा धर्मादिभिस्तु समाना इति विशेषः ॥

अर्थ—अस्तित्व, नास्तित्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, असर्वगतत्व और प्रदेशवत्त्वादि अनन्त स्वभावमयि द्रव्य है. तत्वार्थ टीकामें परिणामिक भावके भेदों की व्याख्या करते हुवे कहा है-पुनरपि

आदि शद्व ग्रहण करते हुवे यह संबोधन किया है कि वस्तु अनन्त धर्ममयि है. उन सबको विस्तार पूर्वक नहीं कह सक्ते. तथापि प्रत्येक द्रव्यमें प्रवचन का जाननेवाला पुरूष यथा संभवित धर्म को संयोजे;–तथा–" क्रियावत्वं " ज्ञानादि गुण जो लोकालोक जानने के लिये प्रतिसमय प्रवर्तमान है; तथा " श्रीभाष्यकारे " ज्ञानादि गुण कारण और उसी गुण की प्रवृत्ति को क्रिया समझनी ऐसे कहा है; तथा देखना यह कार्य ऐसेही धर्मास्तिकायादि के सब गुण तीन परिणती से परिणामी है; इसतरह पंचास्तिकाय अर्थ क्रियाका कर्ता है; यह क्रियावानपना कहा ।

अब " पर्यायोपयोगिता " पर्याय का उपयोगीपना यह जीव का स्वभाव है; धर्म० अधर्म० आकाश० इन तीनों अस्तिकायों के प्रदेश कालसे अनादि अनन्त अवस्थितरूप है; पुद्गल का चलपना सदा–सर्वदा है; पुद्गल परमाणु तथा पुद्गल स्कंध संख्यात या असंख्यात काल पर्यंत एकक्षेत्र में रहसक्ते हैं; पीछे अवश्य चलभाव को प्राप्त होते है; जीवद्रव्य सकर्मा संसारीपने क्षेत्रसे क्षेत्रान्तर; गमनभावसे भवान्तर गमनरूप चलपना है; उस जीवको सम्यग्‌दर्शन, सम्यग्‌ज्ञान और सम्यग् चारित्र की प्रगटतासे परभाव भोगीपना निवारण करके आत्मस्वरूप, निरधारनस्वरूप, भासनस्वरूप परिणमन होनेसे एकत्वस्वरूप, स्वधर्मकर्ता, स्वधर्मभोक्ता, सकल परभाव त्यागी, निरावरण, निःसंग, निरामय, निर्द्वंद्व, निष्कलंक निर्मल, स्वयि अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अरूपी, अव्याबाध, परमानंदमयि, सिद्धात्मा,

सिद्धक्षेत्रमें रहे हुवे सादिअनन्त कालपने समस्तप्रदेश से स्थिर हैं. और संसारी जीवों के आठ रुचकप्रदेश सर्वदा स्थिर है. वे आठों प्रदेश निरावरण हैं. श्री आचाराङ्गकी शेलाङ्गाचार्य कृत टीकामें लोकविजय अध्ययन के प्रथम उद्देशामें यथा—तदनेन पंचदशविधेनापि योगेनात्मा अष्टौ प्रदेशान् विहाय तप्तभाजनोदकवदुद्वर्त्तमानैः सर्वैरैवात्मप्रदेशैरात्मप्रदेशावष्टब्धाकाशस्थं कार्मणशरीरयोग्यं कर्मदलिकं यद् बध्ननाति तत् प्रयोगकर्मेत्युच्यते ॥ अर्थात् इन आठ प्रदेशो में कर्म नहीं लगते.

आठों प्रदेश निरावरण है तो लोकालोक क्यों नहीं देखते ? उत्तर—आत्माकी जो गुणप्रवृत्ति है वह सब प्रदेशों के मिलनेसे प्रवर्तमान होती है. वे आठ प्रदेश अल्प हैं. अल्पत्वात् निरावरण होनेपर भी कार्य नहीं कर सक्ते जैसे—अग्नि का सूक्ष्म कण दाहक प्रकाशक पाचक होते हुवे भी अल्पता के कारण दाहकादि कार्य नहीं कर सकते

वे आठों प्रदेश निरावरण कैसे रहे ? उत्तर—जो चल प्रदेश हैं उनके कर्म लगते हैं. अचल प्रदेशों के कर्म नहीं लगते. भगवतीसूत्र में कहा है—“ जेअइ वेअइ चलइ कंदइ घट्टइ सेबंधइ” ऐसा पाठ है इस वास्ते चल प्रदेश हो वे कर्म बांधे. आठ प्रदेश अचल हैं इस वास्ते कर्म नहीं बांधते। कार्याभ्यास से प्रदेश इकठे होते हैं. तब उन प्रदेशोंके गुण भी उस कार्य को करने के लिये प्रवर्तमान होते हैं. तथा जिस प्रदेशका जो गुण है वह उस प्रदेश को छोड़के अन्य प्रदेश में नहीं जाता. जीवके आठ प्रदेश हमेशां निरावरण रहते हैं. दूसरे प्रदेशोंमें अक्षर का अनन्तवां भाग चेत-

नारूप से निरावरण है. इसतरह बहुत से अनादि परिणामिक भाव होते हैं. वे अनादि परिणामिक भाव जीवके हैं. और धर्मास्तिकायादिमें सप्रदेशादिकी सामानता है। यह विशेष स्वभाव कहा।

भिन्नभिन्नपर्यायप्रवर्त्तनस्वकार्यकारणसहकारभूताः पर्यायानुगतपरिणामविशेषस्वभावाः ते च के, १ परिणामिकता, २ कर्तृता, ३ ज्ञायकता, ४ ग्राहकता, ५ भोक्तृता. ६ रक्षणता, ७ व्याप्यव्यापकता, ८ आधाराधेयता, ९ जन्यजनकता, १० अगुरुलघुता, ११ विभूतकारणता, १२ कारकता, १३ प्रभुता, १४ भावुकता, १५ अभावुकता, १६ स्वकार्यता, १७ सप्रदेशता, १८ गतिस्वभावता, १९ स्थितिस्वभावता, २० अवगाहकस्वभावता, २१ अखण्डता, २२ अचलता, २३ असङ्गता, २४ अक्रियता, २५ सक्रियता इत्यादि स्वीयोपकारणप्रवृत्तिनैमित्तिकाः उक्तं च सम्मतौ आरोपोपचारेण यद्यदपेक्षते तन्न वस्तुधर्मः उपाधिताभवनात् न चोपाधिर्वस्तुसत्ता इति ॥

अर्थ—विशेष स्वभाव कहते है. भिन्न भिन्न पर्यायका कार्य कारण प्रवर्त्तन में सहकार भूत जो पर्यायानुगत परिणामिक भाव उसको विशेष स्वभाव कहते हैं. वे अनेक प्रकार से हैं. श्री हरीभद्र सूरिकृत शास्त्र वार्ता समुच्चय ग्रन्थमें कहा है. उसको कहते हैं, (१) सब द्रव्यों के अपने अपने गुण प्रतिसमय कार्य करनेके लिये भिन्न भिन्न परिणाम रूपसे प्रवर्तमान होते है. वे अपने गुणके कारणिक हो उसको परिणामिक स्वभाव कहते हैं. (२) " तत्र

कर्तृत्वं जीवस्य नन्येषां " जीव कर्ता है अन्य नहीं. " अप्पकत्ता विकत्ताय " इति उत्तराध्ययनवचनात् (३) ज्ञायकता—जानने की शक्ति जीवमें है अथवा ज्ञानलक्षण जीव है. " गिन्हई कायिएणं " इति आवश्यक निर्युक्तिवचनात् (४) ग्राहकता=ग्रहणशक्ति भी जीवमें है गृह्णामिति क्रियाका कर्ता जीव हैं. (५) भोक्ताशक्ति भी जीवमें है " जो कुणइ सो भुंजइ ॥ यः कर्त्ता स एव भोक्ता " इति वचनात् (१) रक्षणता (२) व्याप्यव्यापकता (३) आधाराधेयता (४) जन्यजनकता. तत्वार्थवृत्ति में है. (१) अगुरुलघुता (२) विभूता (३) कारणता (४) कार्यता (५) कारकता इन शक्तियों की व्याख्या श्रीविशेषावश्यक में है. (१) भावुकता (२) अभावुकता शक्तिक वर्णन श्रीहरीभद्रसूरिकृत भावुकनामा प्रकरण में है. और कितनीक शक्तियों का वर्णन अनेकान्तजयपताका, सम्मतितर्कादि जैन तर्कग्रन्थोमें लिखा है.

उर्ध्वप्रचयशक्ति, तिर्यक्प्रचयशक्ति, ओघशक्ति और समुचितशक्ति का वर्णन सम्मतिग्रन्थ में है. और जो द्विगुणात्मा माननेवाले हैं. वे सर्वधर्म शक्तिरूप मानते हैं. उन्होने दानादिलब्धी और अव्याबाधादि सुख को शक्तिरूपसे माना है. यहां व्याख्यानमें जो गुणको करण कहा है वहां कर्तादिपना है वह सामर्थ्यरूप है जानना, देखना यह कार्य है. कितनीक शक्तियां जीवमें है और कितनीक पंचास्तिकाय में है.

तथा देवसेनजी कृत नयचक्रमें जीवको अचेतन, स्वभाव, मूर्त स्वभाव तथा पुद्गलपरमाणुको चेतन स्वभाव, अमूर्त स्वभाव

कहा है. वे असत् है इनको आरोपपने से कोई कह भी दे तो केवल कथनमात्र है परन्तु अस्तिरूप नहीं है जिसध मेंकी आरोप से वा उपचार से गवेषणा कि जाय वह वास्तवीक वस्तुधर्म नहीं है. उपाधीरूप है और उपाधी है वह वस्तु सत्ता नहीं समझी जाती। यह विशेष स्वभाव कहा.

धर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियागतिसहायादयोगुणाः ।

अधर्मास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रिया स्थितिसहायादयो गुणाः ।

आकशास्तिकाये अमूर्ताचेतनाक्रियावगाहनादयो गुणाः पुद्गलास्तिकाये मूर्ताचेतनासक्रियपुरणगलनादयोवर्णगन्ध-रसस्पर्शादयो गुणाः जीवास्तिकाये ज्ञानदर्शनचारित्रवीर्य अव्याबाधामूर्ताऽगुरुलघ्वनवगाहादयो गुणाः । एवं प्रति द्रव्यं गुणानामनन्तत्वं ज्ञेयम् ॥

अर्थ—धर्मास्तिकायके चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) गतिसहाय इत्यादि अनन्तगुणी है । अधर्मास्ति-कायके चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) स्थि-तिसहाय इत्यादि अनन्तगुणी है । आकाशास्तिकाय के चार गुण (१) अरूपी (२) अचेतन (३) अक्रिय (४) अवगाहनादि अनन्त गुणी है । पुद्गलास्तिकायके चार गुण (१) रूपी (२) अचेतन (३) सक्रिय (४) पुरणगलन (१) वर्ण (२) गंध (३) रस (४) स्पर्श इत्यादि अनन्तगुणी है । जीवास्तिकाय में (१) ज्ञान (२) दर्शन (३) चारित्र (४) वीर्य (५) अव्याबाध (६) अरूपी (७) अगुरुलघु

(८) अन अवगाहानादि अनन्त गुण है इस तरह पंचास्तिकाय अनन्त गुणमयी है।

आगमसारसे षडद्रव्यके पर्याय.

धर्मास्तिकाय के चार पर्याय (१) खंघ (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु। अधर्मास्तिकायके चार पर्याय (१) खंध (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु आकाशास्तिकायके चार पर्याय (१) संघ (२) देश (३) प्रदेश (४) अगुरुलघु। पुद्गलास्तिकायके चार पर्याय (१) वर्ण (२) गंध (३) रस (४) स्पर्श अगुरुलघु. सहित। कालद्रव्यके चार पर्याय (१) अतीतकाल (२) अनागतकाल (३) वर्तमान काल (४) अगुरुलघु। जीवास्तिकायके चार पर्याय (१) अव्याबाध (२) अनवगाही (३) अमूर्ती (४) अगुरुलघु। इत्यादि

नयाधिकार.

पर्यायाः षोढा द्रव्यपर्याया (१) असंख्येयप्रदेशसिद्धत्वादयः। (२) द्रव्यव्यञ्जनपर्यायाः द्रव्याणां विशेषगुणाश्चेतनादयश्चलनसहकारादयश्च, (३) गुणपर्यायाः गुणाविभागादयः (४) गुणव्यञ्जनपर्यायाः ज्ञायकादयः कार्यरूपाः मतिज्ञानादयः ज्ञानस्य, चक्षुदर्शनादयो दर्शनस्य, क्षमामार्दवादयः चारित्रस्य, वर्णगन्धस्पर्शादयो मूर्तस्य इत्यादि (५) स्वभावपर्यायाः अगुरूलघुविकाराः ते च द्वादशप्रकाराः षट् गुण हानिवृद्धिरूपाः अवाग्गोचराः एते पञ्चपर्यायाः सर्वद्रव्येषु (६) विभावपर्यायाः जीवे नरनारकादयः॥ पुद्गलेद्व्यणुकतोऽनन्ताणुकपर्यन्तास्कन्धाः।

अर्थ—अब नयाधिकार कहते हैं; नयके मुख्य दो भेद हैं; (१) द्रव्यास्ति (२) पर्यायास्ति जिस में द्रव्यास्तिनय के दो भेद (१) शुद्ध द्रव्यास्ति, (२) अशुद्ध द्रव्यास्ति देवसेन कृत पद्धति में द्रव्यास्ति के दश भेद किये हैं. वे सब दो भेदो में समावेस होते हैं. और सामान्य स्वभाव में उन का समावेस हो गया हैं. इस लिये यहां वरणन नहीं करते आगे देख लेना।

पर्यायास्तिक नय के छे भेद हैं. (१) द्रव्य में एकत्वपने रहे हुवे जीवादि के असंख्यात प्रदेश तथा आकाश के अनन्त प्रदेश इनको द्रव्य पर्याय कहते हैं. और सिद्धत्व, अखण्डत्वादि

तथा द्रव्यका प्रगटपना मानते हैं उस को द्रव्य व्यंजन पर्याय कहते हैं।

(२) द्रव्य का वह गुण जो अन्यद्रव्य में नहीं होता उस को विशेषगुण कहते हैं; जैसे—जीव का चेतनादि; धर्मास्तिकाय का चलनसहकार; अधर्मास्तिकाय का स्थिरसहकार; आकाश में अवगाहदान; और पुद्गल में पुरणगलनपना ये गुण द्रव्य की भिन्नता को प्रगट करते हैं; इस लिये इन को व्यंजन पर्याय कहते हैं।

(३) प्रत्येक गुण के अविभागपर्याय अनन्त हैं; उन के पिंड को अर्थात् उन अविभागपर्यायों के समुदाय को गुण पर्याय कहते हैं।

[४] ज्ञान का जाननापन; चारित्र का स्थिरतापन अथवा—ज्ञान के मतिज्ञानादि पांच भेद; दर्शन के चक्षुदर्शनादि; चारित्र के क्षमा मार्दवादि भेद तथापुद्गल का वर्णगन्धरसस्पर्शमूर्तादि और अरूपी गुण का अवर्ण अगन्ध अरस अस्पर्श इत्यादि गुण हैं वे गुण व्यंजन पर्याय हैं।

[५] स्वभाव पर्याय—वस्तु का कोइ स्वभाव ऐसा जो अगुरुलघुपने छे प्रकार की हानि तथा छे प्रकार की वृद्धि एवं बारह प्रकार से परिणमन करता है इस में किसी का प्रयोग—सहायता नहीं है किन्तु वस्तु का मूल स्वभाव—धर्म ही है; इस का स्वरूप पूर्णतया वचनगोचर नहीं होता और अनुभवगम्य भी

नहीं है क्यों कि ठाणांगसूत्र की टीका में श्रुतज्ञान के अधिकार का सात अंग कहा है [१] सूत्र [२] निर्युक्ति [३] भाष्य [४] चूर्णि जो सूत्रादि सब का अर्थ प्रकाश करे [५] टीका—निरन्तर व्याख्या, ये पांच अंग ग्रन्थरूप है; [६] परंपरारूप अंग [७] अनुभवरूप अंग इन सातों का विनय सहित पठनपाठन करने से सच्चे अर्थ की प्राप्ति होती है; और आत्मा का निरमल गुण प्रगट होता है श्रीभगवती सूत्र में कहा है:—"सुत्तत्थो खलु पढमो बीओ नियुत्तिमिसिओ भणीओ तइयो अनिर विसेसो एस विहि होइ अणुओगो" ये पांच पर्याय सब द्रव्यो में होते हैं।

[६] विभाव पर्याय—यह जीव और पुद्गल में हैं; जीव में नरनारकादिरूप विभाव पर्याय है और पुद्गल में द्वेणुकादि यावत् अनन्ताणुकस्कंध तथा अनन्त गुणपर्यन्त स्कंधरूप विभाव पर्याय है।

॥ निक्षेप स्वरूप ॥

मेर्वाद्यनादिनित्यपर्यायाः चरमशरीरत्रिभागन्यूनावगाहनादयः सादिनित्यपर्यायाः सादिसान्तपर्यायाः भवशरीराध्यवसायादयः अनादिसान्तपर्यायाः भव्यत्वादयः तथा च निक्षेपाः सहजरूपा वस्तुनः पर्यायाः एवं चत्वारो वत्थुपज्झाया इति भाष्य वचनात् नामयुक्तेमति वस्तुनि निक्षेपचतुष्टयं युक्तम् उक्तं चानुयोगद्वारे जत्थ य जं जाणिज्झा, निक्खेवं निरिखवे निखसेसं, जत्थ य नो जाणिज्झा, च उक्कं निरिकवे तत्थ, तत्र नामनिक्षेपः स्थापनानिक्षेपः द्रव्य-

निक्षेपः भावनिक्षेपः तत्र नामनिक्षेपो द्विविधः सहजा आरोपजा च, द्रव्यनिक्षेपो द्विविधः आगमतो नोआगमतश्च तत्र आगमतः तदर्थज्ञानानुपयुक्तः, नोआगमतो ज्ञशरीरभव्यशरीर तद्व्यतिरिक्तभेदात्रिधा, भावनिक्षेपो द्विविधः आगमतो नोआगमतश्च तद्ज्ञानोपयुक्तः तद्गुणमयश्च वस्तुस्वधर्मयुक्तं तत्र निक्षेपा वस्तुनः स्वपर्यायाः धर्मभेदाः ।

अर्थ—पुद्गल का मेरू प्रमुख अनादि नित्य पर्याय है। जीव की सिद्धावस्था; सिद्धावगाहनादि सादि नित्यपर्याय है। वीर्य के क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाले भाव, शरीर और अध्यवसाय ये तीनो योग स्थान जिस में कषाय स्थान जो चेतना के क्षयोपशम कषाय के उदय से प्राप्त हुवा और संयम स्थान जो चारित्र का क्षयोपशम परिणामी चेतनादि गुण. ये सब अध्यवसायस्थान सादि सान्त पर्याय हैं. । सिद्धगमनयोग्यता धर्म—भव्यत्वपर्याय अनादि सान्त है क्यों कि सिद्धता प्रगट होने पर भव्यत्व पर्याय का विनाश होता है इस वास्ते अनादि सान्तपना कहा।

वस्तुस्वपर्यायापेक्षा प्रत्येक वस्तुमें सामान्यरूपसे चार निक्षेप है; विशेषावश्यक भाष्य में कहा है; "चत्तारो वत्थु पज्झाया" इति वचनात् स्वपर्याय कहा है; अनुयोगद्वार में कहा है कि जिस वस्तु में जितने निक्षेप ज्ञान हो उतने कहना कदाचित् विशेष निक्षेपका भाष न हो तो नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव यह चारे निक्षेप अवश्य कहना।

नाम निक्षेप के दो भेद (१) सहजनाम (२) सांकेति-

कनाम। स्थापना निक्षेप के दो भेद (१) सहज स्थापना जो वस्तु की अवगाहना रूप (२) आरोपस्थापना जो आरोपकर के स्थापन की जाय अर्थात् कृत्रिम। द्रव्यनिक्षेप के दो भेद (१) आगमसे द्रव्यनिक्षेप जो जीव स्वरूप के विना जाने तपसंयमादि क्रिया करनी या लाज मर्यादा के वास्ते सूत्र सिद्धान्त पढ़ना (२) नोआगम द्रव्यनिक्षेप वस्तु गुण सहित है परन्तु वर्तमान में गुणरूप नहीं है जिसके तीन भेद (१) ज्ञशरीर—मरे हुवे पुरुषका शरीर जैसे—रूषभदेव स्वामी के शरीर की भक्ती जंबूद्वीपपन्नती में लिखी है. (२) भव्य शरीर—वर्तमान में तो गुण नहीं है परन्तु गुणमय होगा जैसे—एवन्नामुनि (३) तद्व्यतिरिक्त—जो गुण सहित विद्यमान है परन्तु वर्तमान में उपयोग सहित नहीं वर्तता। भाव निक्षेप के दो भेद (१) आगमसे भाव निक्षेप जो आगमसे अर्थ को जाननेवाला और उपयोग सहित वर्तता हैं (२) नोआगमसे भावनिक्षेप जिस प्रकारसे ज्ञेय वर्तता है वही रूप है।

इन चार निक्षेपों में प्रथम के तीन निक्षेप कारणरूप है और चौथा भाव निक्षेप कार्यरूप है. भाव निक्षेपको उत्पन्न करने के लिये पहिले के तीन निक्षेप सप्रमाण है अन्यथा अप्रमाण है. पहिले के तीन निक्षेप द्रव्यनय है और भावनिक्षेप भावनय है भावनिक्षेप को नहीं उत्पन्न करनेवाली केवल द्रव्य प्रवृत्ति निष्फल है श्री आचाराङ्ग सूत्र की टीकाके लोकविजय अध्ययन में कहा है. " फलमेव गुणः फलगुणः फलं च क्रिया भवति तस्याश्च क्रियायाः

अनात्यन्तिकोगुनैकान्तिको भवेत फलं गुणोप्यगुणो भवति सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र क्रिया यास्ते कान्तिकानाबाध सुखाख्यसिद्धि गुणोऽवाप्यते एतदुक्तं भवति सम्यग् दर्शनादिकैव क्रियासिद्धि फल गुणेन फलवत्यपरा तु सांसारिक सुख फलाभ्यास एव फलाध्यारोपान्निष्फलत्यर्थः "

रत्नत्रयी परिणाम विना जो क्रिया करनी है उससे संसार सुख मिलता है. वह क्रिया निष्फल है. एसा पाठ है इसलिये भावानिक्षेप के कारण विना पहिले के तीन निक्षेप निष्फल है. निक्षेप है वह मूल वस्तु का पर्याय है और वस्तु का स्वधर्म है ।

॥ नयस्वरूप ॥

नयास्तु पदार्थज्ञाने ज्ञानांशाः तत्रानन्तधर्मात्मके वस्तुन्येक धर्मोन्नयनं ज्ञाननयः तथा " रत्नाकरे " नीयते येने श्रुताख्य-प्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः स प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषोनयः, स्वाभिप्रेतादंशापलापी पुनर्नयोभासः, स व्याससमासाभ्यां द्विप्रकारः व्यासतोऽनेकविकल्पः समासतो द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यागार्थिकः तत्र द्रव्यार्थिकश्चतुर्धा (१) नैगमः, (२) संग्रहः, (३) व्यवहारः, (४) ऋजुसूत्रभेदात्, पर्यायार्थिकस्त्रिधा (१) शब्दः (२) समभिरूढः (३) एवंभूतभेदात् ।

अर्थ—पदार्थ के ज्ञानांसको नय कहते हैं.—जिसका लक्षण ॥ वस्तु अनन्त धर्मात्मक है. जैसे—जीवादि एक पदार्थ में अनन्त धर्म है. उसमें से एक धर्म की गवेषणा की. और अन्य अनन्ते धर्म रहे हुवे है. उनका उच्छेद भी नहीं और ग्रहण भी नहीं.

किन्तु एक धर्म की मुख्यता स्थापित करनी उसको नय कहते है. इसकी विस्तार पूर्वक व्याख्या की जाय तो नयके अनेक भेद होते हैं. परन्तु संक्षेपसे दो भेद हैं. (१) द्रव्यास्तिक (२) पर्यायास्तिक इनका वर्णन रत्नाकरावतारिका ग्रन्थसे लिखते हैं. " द्रवति द्रोष्यति अदुद्रवत् तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यं तदेवार्थः सोऽस्ति यस्य विषयत्वेन स द्रव्यार्थिक. "

वर्तमानकाल में पर्याय का उत्पादक हैं, भूत—अतीतकाल में उत्पाद-कथाः भवीष्य काल में उत्पादक होगा उसको द्रव्य कहते हैं. उसी अर्थका प्रयोजनपना है जिसमें अर्थात् पर्याय है जन्य और द्रव्य है जनक तथा द्रव्य है वह ध्रुव है और पर्याय है अ-ध्रुव अर्थात् उत्पाद व्यय रूप उक्तं च ।

" पर्येति उत्पादविनाशौ प्राप्नोतीति पर्यायः स एवार्थः सोऽस्ति यस्यासौ पर्यायार्थिकः " जिस पर्यायसे उत्पाद विनासरूप नवीनता प्राप्त हो ऐसे स्वरूपानुयायी को पर्यायार्थिक नय कहते हैं। उस द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक धर्म को द्रव्य, पर्याय भी कहते हैं ।

प्रश्न—द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक दो भेद कहे हैं. वैसे तीसरा गुणार्थिक भेद क्यों नहीं कहते ?

उत्तर—इसके लिये रत्नाकारावतारिका में कहा है " गुणस्य पर्याये एवान्तरभूतत्वात् तेन पर्यायार्थिकेनैव तत् सङ्ग्रहात् " अ-र्थात्—गुण पर्याय में अन्तरभूत है इस लिये पर्यायार्थिक में इस

का समावेस होता है। पर्यायार्थिक के दो भेद हैं (१) सहभावि, (२) क्रमभावि, सहभावि गुण है वह पर्याय में अन्तरभूत है।

प्रश्न—द्रव्य पर्याय से व्यतिरिक्त सामान्य; विशेष दो धर्म और भी हैं। तो सामान्य; विशेष दो नय और क्यों नहीं कहते ?

उत्तर—तथाहि "द्रव्यपर्यायाभ्यां व्यतिरिक्तयोः सामान्य विशेषयोरप्रासिद्धेः तथाहि द्विप्रकारं सामान्यमुक्तमूर्ध्वतासामान्यं तु प्रतिव्यक्तिसदृशपरिणामलक्षणं व्यञ्जनपर्याय एव" इस पाठ से उर्ध्वसामान्य तो द्रव्य का धर्म हैं। और तिर्यक् सामान्य पर्याय धर्म है। "विशेषोऽपि वैसादृश्यविवर्तलक्षणंपर्याय एवान्तर्भवति नैताभ्यामधिकनयावकाशः"। और विशेष का लक्षण अनेक रीति से वर्तना सो इस का पर्यायार्थिक में अन्तर भाव—समावेस होता है इस लिये सामान्य विशेष को भिन्ननय कहना योग्य नहीं है।

द्रव्यार्थिक नय के चार भेद हैं. [१] नैगम (२) संग्रह (३) व्यवहार (४) ऋजुसूत्र और पर्यायार्थिक के तीन भेद हैं (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवंभूत.

विकल्पान्तरे ऋजुसूत्रस्य पर्यायार्थिकताप्यस्ति स नेगमस्त्रिप्रकाराः आरोपांशसङ्कल्पभेदात् विशेषावश्यकेतूपचारस्य भिन्नग्रहणात् चतुर्विधः। न एके गमा आशयविशेषा यस्य स नैगमः तत्र चतुःप्रकारा आरोपः द्रव्यारोपगुणारोपकालारोपकारणाद्यारोपभेदात् तत्र गुणे द्रव्यारोपः पञ्चास्तिकाय-

वर्तनागुणस्य कालस्य द्रव्यकथनं एतद्गुणे द्रव्यारोपः १ ज्ञानमेवात्मा अत्र द्रव्येगुणारोपः २ वर्तमानकाले अतीतकालारोपः अद्य दीपोत्सवे वीरनर्वाणं वर्तमानकाले अनागतकालारोपः अद्येत्र पद्मनाभनिर्वाणं, एवं षड् भेदाः कारणे कार्यारोपः बाह्यक्रियायाः धर्मत्वं धर्म कारणस्य धर्मत्वेन कथनं। सङ्कल्पो द्विभिधः स्वपरिणामरूपः कार्यान्तरपरिणामश्च अंशोपि द्विविधः भिन्नोऽभिन्नश्चेत्यादि शतभेदोनैगमः।

अर्थ—कोई ऋजुसूत्रनय को विकल्प से पर्यायार्थिक भी कहते हैं. क्यों कि यह विकल्पनय हैं. अस्तु नैगम के तीन भेद हैं. (१) आरोप (२) अंस (३) संकल्प तथा—विशेषावश्यक में उपचाररूप चौथा भेद भी कहा है. नएकगमो—अभिप्राय उस को नैगमनय कहते हैं. अर्थात् नैगमनय अनेक आशयी है। आरोपनैगम के चार भेद हैं. (१) द्रव्यारोप (२) गुणारोप (३) कालारोप (४] कारणाद्यारोप.

(१) गुणविषय द्रव्य का आरोप करना उस को द्रव्यारोप कहते हैं. जैसे वर्तना परिणाम पंचास्तिकाय का परिणमन धर्म है उस को काल धर्म कहना. यहां काल को द्रव्य कहा यह आरोप से है किन्तु वस्तुरूप भिन्न पिंडपने द्रव्य नहीं है. इति द्रव्यारोप (२) द्रव्य में गुण का आरोप करना. जैसे—ज्ञान आत्मा का गुण है परन्तु ज्ञानी वही आत्मा इस तरह ज्ञान को आत्मा कहा. यह गुणारोप। (३) कालारोप—जैसे—वीर भगवान को निर्वाण हुवे

बहुत काल हुवा परन्तु आज दीवाळी के दिन वीर भगवान का नीर्वाण हुवा ऐसा कहते हैं. यह वर्तमान में अतीत काल का आरोप है अथवा आज पद्मनाभ प्रभु का निर्वाण है ऐसा कहना यह वर्तमान काल में अतीत काल का आरोप हुवा इसी तरह अतीत अनागत वर्तमान काल के दो २ भेद करने से कालारोप के छे भेद होते हैं.

(४) कारण विषय कार्य का आरोप करना जिस के चार भेद (१) उपादानकारण २ निमितकारण ३ असाधारणकारण ४ अपेक्षाकारण. जैसे—बाह्य क्रिया है वह साध्वसापेक्ष वाले को धर्म के लिये निमित्त कारण है. इस लिये धर्मकारण कहना इसी तरह तीर्थंकर मोक्ष का कारण है इस लिये उनको तिन्नाणं तारयाणं कहना. यह कारणविषय कर्तापने का आरोप कहा इस तरह आरोपता अनेक प्रकार से है। संकल्प नैगम के दो भेद हैं. १ स्वपरिणामरूपवीर्य चेतना के नवीन २ क्षयोपशम २ कार्यान्तर से नये २ कार्य से नया २ उपयोग होना। और अंश नैगम के भी दो भेद हैं- १ भिन्नांश—जुदे २ अंश स्कंधादि २ अभिन्नांश—आत्मा के प्रदेश तथा गुण के अविभाग इत्यादि ये सब नैगमनय के भेद हैं।

सामान्य वस्तुसत्ता सङ्ग्राहकः सङ्ग्रहः स द्विविधः सामान्यसङ्ग्रहो। विशेषसङ्ग्रहश्च, सामान्यसङ्ग्रहो। द्विविधः मूलत उत्तरश्च मूलतोऽस्तित्वादिभेदतः षड्विधः उत्तरतो जातिसमु-

दायभेदरूपः जातितः गवि गोत्वं घटे घटत्वं वनस्पतौ वनस्पतित्वं समुदायतो सहकारात्मके वने सहकारवनं, मनुष्यसमुहे मनुष्यवृंदं, इत्यादि समुदायरूपः अथवा द्रव्यमिति सामान्य संङ्गहः जीव इति विशेषसङ्ग्रहः तथा विशेषावश्यके " संगहणं संगिन्हइ संगिन्हं तेवतेणं जं भेया तो संगहो संगिहिय पिंडियत्थं वउज्जास्स " संग्रहणं सामान्यरूपतया सर्ववस्तुनामाक्रोडनं सङ्ग्रहः अथवा सामान्यरूपतया सर्वं गृह्णातीति सङ्ग्रहः अथवा सर्वेपि भेदाः सामान्यरूपतया संङ्गृह्यन्ते अनेनेति सङ्ग्रह अथवा संङ्गृहीतं पिण्डतं तदेवार्थोऽभिधेयंयस्य तत् सङ्गृहीतपिण्डतार्थं एवं भूतं वचो यस्य सङ्ग्रहस्येति सङ्गहीतपिण्डतं तत् किमुच्यते इत्याह संगहीय मागहीय संपिंडिय मेगजाइमाणीयं ॥ संगहीयमणुगमो वावइरे गोपिंडियं भणियं ॥ १ ॥ सामान्याभिमुख्येनग्रहणं संगृहीतसङ्ग्रह उच्यते, पिण्डितं त्वेकजातिमानितमभिधियते पिण्डितसङ्ग्रहः अथ सर्वव्यक्तिष्वनुगतस्य सामान्यस्य प्रतिपादनमनुगमसङ्ग्रहोऽभिधियते व्यतिरेकस्तु तदितरधर्मनिषेधाद् ग्राह्यधर्मसङ्ग्रहकारकं व्यतिरेक सङ्ग्रहो भण्यते यथा जीवो जीवः इति निषेधे जीवसङ्ग्रह एव जाताः अतः १ सङ्ग्रह २ पिण्डितार्थ ३ अनुगम ४ व्यतिरेकभेदाच्चतुर्विधः अथवा स्वसत्ताख्यं महासामान्यं संगृह्णाति इतरस्तु गोत्वादिकमवान्तरसामान्यं पिण्डितार्थंभिधीयते महासत्तारूपं अवान्तरसत्तारूपं " एगं निच्चं निरवय-

वमक्रियं सव्वगं च सामान्नं* एतद् महासामान्यं गवि गोत्वादिकमवान्तरसामान्यमिति संग्रह.

अर्थ—संग्रह नय का स्वरूप कहते है. सामान्यसे सब द्रव्यों में मुख्य व्यापक नित्यत्वादि सत्तारूप जो धर्म रहा हुवा है उसके संग्रहक को संग्रह नय कहते है जिसके दो भेद है. (१) सामान्य संग्रह (२) विशेष संग्रह; सामान्य संग्रह के दो भेद. (१) मूल सामान्य (२) उत्तर सामान्य. मूल सामान्य संग्रह के आस्तित्वादि छे भेद है. जिसकी व्याख्या पहिले कर चुके है. और उत्तर सामान्य संग्रह के दो भेद है. (१) जाति सामान्य (२) समुदाय सामान्य. जैसे—गाय के समुदाय में गोत्वरूप जाति है, घटमें घटत्व और वनस्पति के समुदाय में वनस्पतिपना यह जाति समुदाय है. और आंब के समुह को अंबबन कहना, मनुष्य के समुह को मनुष्यगण इसको समुदाय सामान्य कहते है यह उत्तर सामान्य संग्रह चक्षु अचक्षु दर्शन ग्राही है. और मूल सामान्य संग्रह अवधिदर्शन, केवलदर्शन ग्राही है.

तथा सामान्यसंग्रह और विशेष संग्रह. जो छे द्रव्य के समुदाय को द्रव्य मानना उसको सामान्य संग्रह कहते हैं. इसमें सब का ग्रहण होता हे और जीवको जीव द्रव्य कहके अजीव द्रव्य से जुदा भेद करना यह विशेष संग्रह है. इसका विस्तार

---

* एकं सामान्यं सवत्र तस्यैव भावात् तथानित्यं सामान्यं अविनाशात् तथा निरवयव अदेशत्वात्, अक्रियं देशान्तरगमनाभावात् सर्वगतं च सामान्यं अक्रियत्वादिति ॥

बहुत है किन्तु विशेषावश्यक से संग्रह नयके चार भेद लिखते है. और मूल पाठमें कही हुई गाथा का अर्थ है।

" संग्रहणं " एकवचन–या–एक अध्यवसाय–उपयोग से एकसाथ ग्रहण किया जाय अथवा सामान्यरूप से सब वस्तु का ग्रहण हो उसको संग्रह कहते हैं. या सामान्यरूप से सब संग्रह करता है उसको संग्रह कहते है. या जिससे सब भेद सामान्यपने ग्रहण किया जाय उसको संग्रह कहते हैं. अथवा " संगृहीतं पिण्डितं " जो वचन समुदाय अर्थ को ग्रहण करे उसको संग्रह कहते है. इसके चार भेद हैं. (१) संगृहीत संग्रह (२) पिण्डित संग्रह (३) अनुगम संग्रह (४) व्यतिरेक संग्रह।

(१) सामान्यरूप से जो बिनापृथक किये वस्तु को ग्रहण करे ऐसा जो उपयोग या वचन या धर्म किसी भी बस्तु में हो उसको संगृहीत संग्रह कहते हैं.

(२) एक जाति के लिये एकपना मान के उस एक में सब का संग्रह हो जैसे–" एगेआया " " एगेपुग्गले " इत्यादि वस्तु अनन्त है परन्तु एक जाति को ग्रहण करता है उसको पिंडित संग्रह कहते है.।

(३) अनेक जीवरूप अनक व्यक्ति है उन सब में जिस धर्म की सामान्यता है जैसे–सत् चित् मयि आत्मा यह धर्म सब जीवो में सदृश है ऐसे ही जीव के लक्षण, सर्व प्रदेश, सर्व गुण-को अनुगम संग्रह कहते है.।

(४) जिसका अग्रहण करने से इतर सब का ग्रहण ज्ञान हो. जैसे अजीव है इस के कहने से जीव नहीं वह अजीव परन्तु कोई जीव भी है ऐसे व्यतिरेक वचन की सिद्धी हुई. या उपयोग से जीव का ग्रहण हुवा यह व्यतिरेक संग्रह. ।

अर्थान्तर संग्रहनय के दो भेद कहते है (१) महा सत्ता रूप (२) अवान्तर सत्तारूप इस तरह दो भेद भी संग्रह नय के कहे हैं.

" सदिति भणियम्मि जम्हा, सव्वत्थाणुप्पवभए बुद्धी । तो सव्वं तम्मतं नत्थितदत्थंतरं किंचि ॥ १ ॥ यद्यस्मात् सदित्येवं भणिते सर्वत्र भुवनत्रयान्तर्गतवस्तुनि बुद्धिरनुप्रवर्तते प्रधावति नहि तत् किमपि वस्तु अस्ति यत् सदित्युक्ते झगिति बुद्धौ न प्रतिभासते तस्मात् सर्वं सत्तामत्रं न पुनः अर्थान्तरं तत्, श्रुतसामर्थ्यात् यत् संग्रहेन संगृह्यते तेन परिणामनरूपत्वादेव संग्रहस्येति "

अर्थात्—तीन भुवन में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो संग्रहनय से ग्रहण न होती हो जो वस्तु है वह सव संग्रह नय ग्राही है. यह संग्रहनय का स्वरूप कहा.

संग्रहगृहीतवस्तुभेदान्तरेण विभजनं व्यवहरणं प्रवर्त्तनं वा व्यवहारः १ स द्विविधः शुद्धोऽशुद्धश्च । शुद्धो द्विविधः वस्तु गतव्यवहारः धर्मास्तिकायादिद्रव्याणां स्वस्वचलनसहकारादि जीवस्य लोकालोकादिज्ञानादिरूपः स्वसम्पूर्णपरमात्मभावसाधनरूपो गुणसाधकावस्थारूपः गुणश्रेणयारोहादिसाधनशुद्धव्यवहारः । अशुद्धोपि द्विविधः सद्भूता सद्भूतभेदात् सद्-

भूतव्यवहारो ज्ञानादिगुणाः परस्परं भिन्नः असद्भूतव्यवहारः कषायात्मादि मनुष्योऽहं देवोऽहं । सोऽपि द्विविधः संश्लेषिताशुद्धव्यवहारः शरीरं मम अहं शरीरी । असंश्लेषिता सद्भूतव्यवहार पुत्रकलत्रादि, तौ च उपचरितानुपचरितव्यवहारभेदात् द्विविधौ तथा च विशेषावश्यके " ववहरणं ववहरए स तेण व वहीरए व सामन्नं । ववहारपरो व जओ विसेसओ तेण ववहारो " व्यवहरणं व्यवहारः व्यवहरति स इति वा व्यवहारः विशेषतो व्यवह्रियते निराक्रियते सामान्यं तेनेति व्यवहारः लोको व्यवहारपरो वा विशेषतो यस्मात्तेन व्यवहारः । न व्यवहारास्वस्वधर्मप्रवर्तितेन ऋते सामान्यमिति स्वगुणप्रवृत्तिरूपव्यवहारस्यैव वस्तुत्वं तमंतरेण तद्भावात् स द्विविधः विभजन, १ प्रवृत्ति २ भेदात् । प्रवृत्तिव्यवहारस्त्रिविधः वस्तुप्रवृत्तिः १ साधनप्रवृत्तिः २ लोकप्रवृत्तिश्च साधनप्रवृत्तिश्च त्रिधाः लोकोत्तर, लौकिक, कुप्रावचनिक, भेदात् इति व्यवहारनयः श्री विशेषावश्यके ॥

अर्थः—अब व्यवहारनय की व्याख्या करते हैं, संग्रहसे ग्रहित जो वस्तु उसका भेदान्तरसे विभाग करना उसको व्यवहार नय कहते हैं; जैसे द्रव्य यह संग्रहात्मक सामान्य नाम है. विवेचन करनेपर द्रव्य के दो भेद (१) जीवद्रव्य (२) अजीव द्रव्य. पुनः जीवद्रव्य के दो भेद (१) सिद्ध (२) संसारी इत्यादि रूपसे भिन्नता करनी यह व्यवहारनय का स्वभाव है. अथवा व्यवहार प्रवर्त्तन को व्यवहारनय कहते हैं. जिसके दो

भेद हैं, (१) शुद्धव्यवहार (२) अशुद्धव्यवहार. शुद्धव्यवहार के दो भेद (१) सब द्रव्य की स्वरूपशुद्ध प्रवृत्ति जैसे—धर्मास्तिकाय की चलन सहकारिता, अधर्मास्तिकाय की स्थिरसहकारिता और जीव की ज्ञायकता इत्यादि वस्तुगत शुद्धव्यवहार है. (२) द्रव्य की उत्कृष्टता प्राप्त करने के लिये रत्नत्रयी, शुद्धता, गुणश्रेणी विषयक श्रेण्यारोहणरूप साधन को शुद्धव्यवहार कहते हैं।

अशुद्ध व्यवहार के दो भेद हैं. (१) सद्भूत (२) असद्भूत जिस क्षेत्रमें अवस्था अभेद से रहे हुवे जो ज्ञानादि गुण उन को परस्पर भेद से कहना यह सद्भूत व्यवहार हैं। तथा में क्रोधी, में मानी, में देवता, में मनुष्य इत्यादि यह अशुद्ध व्यवहार है। जिस हेतु के परिणमन से देवपना प्राप्त किया वह देवगति विपाकी कर्म प्रकृती का उदयरूप परभाव है. जिसको यथार्थ ज्ञान विना ज्ञानशून्यजीव एकत्वरूप से मानता है इसी अशुद्धता के कारण अशुद्ध व्यवहार कहा इसके भी दो भेद हैं. (१) संश्लेषित अशुद्धव्यवहार. यथा—शरीर मेरा और में शरीरी इत्यादि (२) असंश्लेषित असद्भूतव्यवहार. जैसे—पुत्र मेरा धनादि मेरा इत्यादि. तथा संश्लेषितअसद्भूतव्यवहार के दो भेद हैं. उपचरित, अनुपचरित. ।

विशेषावश्यक भाष्य में व्यवहार नय के दो भेद कहे हैं. (१) विभजनविभागरूप व्यवहार (२) प्रवृत्तिव्यवहार. । प्रवृत्तिरूप व्यवहार के तीन भेद (१) वस्तु प्रवृत्ति (२) साधनप्रवृत्ति (३) लौकिक प्रवृत्ति। साधनप्रवृत्ति के तीन भेद. (१) अरिहन्त

की आज्ञासे शुद्धसाधन मार्ग इहलोक संसार पुद्गल भोग तथा आसंसादि दोषरहित रत्नत्रयी की परिणति, परभावत्याग सहित लौकोत्तर साधनवृत्ति (२) स्याद्वादविना मिथ्याभिनिवेश साधनवृत्ति (कुप्रावचनिकसाधन) (३) स्वस्वदेश, कुलमर्यादाप्रवृत्ति इसको लोक व्यवहार प्रवृत्ति कहते हैं. इत्यादि व्यवहार नय के भेद समझना । 'द्वादशसार नयचक्र' में एकेक नय के सौ सौ भेद कहे हैं. तत्त्वज्ञान की जिज्ञासावालों को चाहिये वे उस ग्रन्थ को देखें और मनन करे इति व्यवहार नयः ॥

उज्जं ऋजुं सुयं नाणमुज्जुसुयमस्स सोऽयमुज्जुसुओ। सुत्तयइ वाजमुज्जं वत्थु तेणुज्जुसुत्तोति ॥ १ ॥ उऊंतिऋजुश्रुतं सुज्ञानं बोधरूपं ततश्च ऋजु अवक्रमश्रुतमस्यसोऽयमृजुश्रुतं वा अथवा ऋजु अवक्रं वस्तु सूत्रयतीति ऋजुसूत्र इति कथं पुनरेतदभ्युपतगस्य वस्तुनोऽवक्रत्वमित्याह ॥ पच्चुपन्नं संपयमुप्पन्नं जं च जस्स पत्तेयं । तं ऋजु तदेव तस्सत्थि उवकम्मन्नंति जमसंतं ॥ २ ॥ यत्सांप्रतमुत्पन्नं वर्तमानकालीनं वस्तु, यच्च यस्य प्रत्येकमात्मीयतदेव तदुभयस्वरूपं वस्तुप्रत्युत्पन्नमुच्यते तदेवासौ नयः ऋजु प्रतिपाद्यते तदेव च वर्तमानकालीनं वस्तु तस्यार्जुसूत्रस्यास्ति अन्यत्र शेषातीतानागतं परकार्यं च यद्यस्मात् असदविद्यमानं ततो असत्त्वादेव तद्वक्रमिच्छत्यसाविति । अत एव उक्तं निर्युक्तिकृता " पच्चुपन्नगाही उजुसुनयविही मुणेयव्वोति " यतः कालत्रये वर्तमानमंतरेण वस्तुत्वं उक्तं च यतः अतीतं अनागतं भविष्यति न सांप्रतं तद् वर्तते इति वर्त-

मानस्यैव वस्तुत्वमिति अतीतस्य कारणात्। अनागतस्य कार्यता जन्यजनकभावेन प्रवर्तते अतः ऋजुसूत्रं वर्तमानग्राहकं तद् वर्तमानं नामादिचतुःप्रकारं ग्राह्यम् ॥

अर्थ—ऋजुसूत्र नय का स्वरूप कहते हैं. ऋजु—सरल श्रुत—बोध उसको ऋजुसूत्रनय कहते हैं. ऋजु शद्बसे अवक्र अर्थात् सम है श्रुत उसको ऋजुसूत्र कहते है. या ऋजु—अवक्रपने वस्तु को जाने उसको ऋजुसूत्र कहते हैं. अब वस्तुका वक्रपना समझाते हैं. वर्तमानकाल में जो वस्तु है वह ऋजुसूत्र नय ग्राही है. अन्य जो अतीत अनागतरूप वस्तु है वह ऋजुसूत्र की अपेक्षासे नास्ति है अर्थात् असत्य है क्यों कि अतीतकाल तो विनास हो गया और अनागतकाल आया नहीं है इसवास्ते अतीत, अनागत वस्तु अवस्तुरूप है. और जो वर्तमान पर्यायसे है वह वस्तु है. पूर्व और पश्चातकाल ग्राही नैगमनय है.

प्रश्न—संसारी जीवों को सिद्धसमान कहते हो. और अनागत काल में सिद्ध हो गये हैं. तो आप अतीत अनागतकाल को अवस्तु क्यों कहते हो ?

उत्तर—हे भद्रे ! अनागत भावीकेलिये नहीं कहते हैं. किन्तु—वर्तमान में सर्वगुणों का आत्मप्रदेशो में सद्भाव है. परन्तु उनगुणों की आवर्णदोषसे प्रवृत्ति नहीं है. इसलिये तिरोभावीपना संग्रह करके कहा है. परन्तु वस्तु में केवलज्ञानादि सब गुणों का सद्भाव है. इसलिये उनको सिद्ध कहा है.

वस्तु नामादिपर्याय युक्त है. इसलिये नामादि निक्षेप भी इसी ऋजुसूत्र नयके भेदमें है. नामादितीन निक्षेप द्रव्य है. और भावनिक्षेप है वह भाव है. यह व्याख्या कारण, कार्य को विभाग करने के लिये है. परन्तु सामान्यरूप से वस्तुमें चारनिक्षेप है. वे भाव धर्मपने हैं. और स्व स्वकार्यकर्ता हैं. दिगम्बराचार्य ऋजुसूत्र के दो भेद कहते हैं. (१) सूक्ष्मऋजुसूत्र (२) स्थूलऋजुसूत्र. वर्तमानकाल का एक समयग्राही सूक्ष्म ऋजुसूत्रनय है और वहु-कालिक स्थूलऋजुसूत्रनय है. यह कालापेक्षी भाव है. इसलिये इस को भावनय कहते हैं. और योगालम्बीपने बाह्य है इसलिये द्रव्य-नय में भी इसकी गवेषणा की है। इति ऋजुसूत्रनयः

"शप आक्रोशे" शपनमाह्वानमिति शब्दः, शपतीति वा आह्वानयतीति शब्दः, शप्यते आहूयते वस्तु अनेनेति शब्दः, तस्यशब्दस्य यो वाच्योऽर्थस्तत्परिग्रहात्तत्प्रधानत्वान्नयशब्दः, यथा कृतकत्वादित्यादिकः पंचम्यन्तः शब्दोपि हेतुः। अर्थरूपं कृतकत्वमनित्यत्वगमकत्वान्मुख्यतया हेतुरूच्यते उपचारतस्तु तद्वाचकः कृतकत्वशब्दो हेतुरभिधियते एवमिहापि शब्दवाच्यार्थ-परिग्रहादुपचारेण नयोऽपि शब्दो व्यपदिश्यते इति भावः। यथा ऋजुसूत्रनयस्याभीष्टं प्रत्युत्पन्नं वर्त्तमानं तथैव इच्छत्यसौ शब्दनयः। यद्यस्मात्पृथुबुध्नोदरकलितमृन्मयं जलाहरणादि-क्रियाक्षमं प्रसिद्धघटरूपं भावघटमेवेच्छत्यसौ न तु शेषान् नामस्थापनाद्रव्यरूपान् त्रीन् घटानिति। शब्दार्थप्रधानो ह्येष-नयः चेष्टालक्षणश्च घटशब्दार्थो "घट चेष्टायां" घटते इति

घटः अतो जलाहरणादिचेष्टां कुर्वन् घटः । अतश्चतुरोऽपि नामादिघटानिच्छतः ऋजुसूत्राद्विशेषिततरं वस्तु इच्छति असौ । शब्दार्थोपपत्तेर्भावघटस्यैवानेनाभ्युपगमादिति अथवा ऋजुसूत्रात् शब्दनयः विशेषिततरः ऋजुसूत्रे सामान्येन घटोऽभिप्रेतः, शब्देन तु सद्भावादिभिरनेकधर्मैरभिप्रेत इति ते च सप्तभंङ्गाः पूर्वं उक्ता इति ॥

अर्थ—अब शब्दनयका स्वरूप कहते है. शपति–बुलाना पुकारना उसको शब्द कहते हैं. या शप्यते–वस्तुकानाम लेकर पुकारा जाय उसको शब्द कहते हैं. शब्द वाच्यार्थ ग्राही है ऐसा प्रधान पना जिस नय में हो उसको शब्दनय कहते हैं. कृतक–किया उसका हेतु धर्म जिस वस्तु में हो उसको भाषा द्वारा सहना अर्थात् शब्दका कारण वस्तुका धर्म हुवा जैसे–जलाहरण धर्म जिस में हो उसको घट कहते हैं. यहां भी शब्दसे वाच्य अर्थ ग्रहण हुवा इसीलिये इसका नाम भी शब्दनय कहा है. जैसे–ऋजुसूत्र नय को वर्तमान कालिक धर्म इष्ट है वैसे शब्दादि नय को भी वर्तमान धर्म ही इष्ट हैं । यथा—

जिसका पेट नीचेका भागगोल और बड़ा हो, उपर संकोचित हो उदर कलितयुक्त जलाहरणक्रिया के सामर्थ प्रसिद्ध घटरूप जो भावघट उसीको घट इच्छे–समझे. परन्तु शेष नाम, स्थापना, द्रव्यरूप तीन घट को शब्दनय घट नहीं मानता. अर्थात् घटशब्द के अर्थ का संकेत जिसमें हो उसी को घट कहे. घट धातु चेष्टा

वाची है अतः कारणात् यह शब्दनय घटरूप चेष्टा करते हुवे को ही घट मानता है और ऋजुसूत्र नय चारनिक्षेपसंयुक्त को घट मानता है. शब्दनय भावघट को घटमानता है इतनी विशेषता है की शब्द के अर्थ की जहां व्युत्पत्ति हो उसी को वस्तुपने कहे अर्थात् ऋजुसूत्रनय सामान्य घट की गवेषणा की और शब्दनय सद्भाव जो अस्तिधर्म तथा असद्भाव जो नास्तिधर्म इनसबसे संयुक्त वस्तु को वस्तुरूप मानता है।

तथा वस्तु के शब्द उच्चार को सात भांगोंसे प्रतिपादन करना चाहिये. इस लिये सप्तभंगी के जितने भेद होते हैं उतने भेद शब्दनय के भी समझ लेना। सप्तभंगी का स्वरूप पूर्व कह चुके हैं। वह शब्दनय वस्तु के पर्याय को अवलम्बन करके उसके भाव धर्म का ग्राहक है. इसलिये शब्दनयमें वस्तु के भावधर्म–निक्षेप की मुख्यता है. और पूर्व के चार नयों में नामादि तीन निक्षेप की मुख्यता है। इति शब्दनय स्वरूप।

गाथा ॥ जं जं सण्णं, भासइ तं तं चिय समभिरोहइ जम्हा ॥ सण्णंतरत्थविमुहो, तओ नओ समभिरूढोत्ति ॥ १ ॥ यां यां संज्ञां घटादिलक्षणां भाषते वदति तां तामेव यस्मात्-संज्ञान्तरार्थविमुखः समभिरूढोनयः नानार्थनामा एव भाषते यदि एकपर्यायमपेक्ष्य सर्वपर्यायवाचकत्वं तथा एकपर्यायाणां सङ्करः पर्यायसङ्करे च वस्तुसङ्करो भवत्येवेति मा भूत्संकरदोषः, अतः पर्यायान्तरानपेक्ष एव, समभिरूढनयः इति ॥

अर्थ—समभिरूढनय की व्याख्या करते हैं. जो शब्दनय है वह इन्द्र, शक्र, पुरंदर इत्यादि सब इन्द्रके नाम भेद हैं. परन्तु एक पर्याययुक्त इन्द्रको देखकर उसका सब नाम कहे । उक्तंच विशेषावश्यके "एकस्मिन्नपि इन्द्रादिके वस्तुनि यावत् इन्द्रन शक्रन–पुरदारणादयोऽर्थघटन्ते तद्वेशेनन्द्र शक्रादिबहुपर्यायमपि तद्वस्तु शब्दनयो मन्यते समभिरूढस्तु नैवं मन्यते इत्यनयोर्भेदः"

वस्तु के एकपर्याय प्रगट होनेपर (शेष पर्यायों के अभाव में भी) शब्दनय उस वस्तु को सब नामोंसे बोलावे–संबोधे परन्तु समभिरूढ़नय को वह अमान्य है इस वास्ते शब्द और समभिरूढ नय में अन्तर–भेद है ।

कुंभादि में जो संज्ञा का वाच्य अर्थ दिखे वही संज्ञा कहे जिस में संज्ञान्तर अर्थ का विमुखपना है उसको समभिरूढनय कहते हैं. अगर एकसंज्ञा में सर्व नामान्तर मानते हैं तो सबको संकरता दोष होता है. तब पर्याय का भेद नहीं रहता। पर्यायान्तर होता है वह भेदपने ही होता है. इसवास्ते लिंगभेद की सापेक्षतासे वस्तुभेदपना मानना चाहिये यह समभिरूढ नय स्वरूप कहा इस नय में भेदज्ञान की मुख्यता है ।

एवं जह सद्दत्थो संतो भूओ तदन्नहाभूओ ॥ तेणेवं भूयनओ, सद्दत्थपरो विसेसेणं ॥१॥ एवं यथा घटचेष्टायामित्यादिरूपेण शब्दार्थो व्यवस्थितः तद्वत्ति, तथैव यो वर्त्तते घटादिकोऽर्थः स एवं सन् भूतो विद्यमानः "तदन्नाहभूओति" वस्तु तदन्यथा शब्दार्थोल्लंघनेन वर्तते स तत्त्वतो घटाद्यर्थोपि न भवति

किंभूतो ? विद्यमानः येनैव मन्यते तेन कारणेन शब्दनय समभिरूढनयाभ्यां सकाशादेवंभूतनयो विशेषेण शब्दार्थनयतत्परः। अयं हि योषिन्मस्तकारूढं जलाहरणादिक्रियानिमित्तं घटमानमेव चेष्टमानमेव घटं मन्यते न तु गृहकोणादिव्यवस्थितं। विशेषतः शब्दार्थतत्परोयमिति। वंजणमत्थेणत्थं च वंजणेणमयं विसेसेइ॥ जह घडसद्दं चेट्ठावया तहा तंपि तेणेव॥ १॥ व्यंज्यते अर्थोऽनेनेति व्यञ्जनं वाचकशब्दो घटादिस्तं चेष्टावता एतद्वाच्येनोऽर्थेन विशिनष्टि स एव घट शब्दो यच्चेष्टावन्तमर्थं प्रतिपादयति, नान्यम् इत्येवं शब्दमर्थेन नैयत्ये व्यवस्थापयतीत्यर्थः। तथार्थमप्युक्त–लक्षणमभिहितरूपेण व्यञ्जनेन विशेषयति चेष्टापि सैव या घटशब्देन वाच्यत्वेन प्रसिद्धा योषिन्मस्तकारूढस्य जलाहरणादिक्रियारूपाः, न तु स्थानतरणक्रियात्मिका, इत्येवमर्थं शब्देन नैयत्ये स्थापयतीत्यर्थः इत्येवमुभयमं विशेषयति शब्दार्थौ नार्थः शब्देन नैयत्यें स्थापयतीत्यर्थः। एतदेवाह–यदा योषिन्मस्तकारूढश्चेष्टावानर्थो घटशब्देनोच्यते स घटलक्षणोऽर्थः स च तद्वाचको घटशब्दः अन्यदा तु वस्त्वंतरस्येव तच्चेष्टाभावादघटत्वं, घटध्वनेश्चावाचकत्वमित्येवमुभयविशेषक एवंभूतनय इति॥

अर्थ—एवंभूतनय का स्वरूप लिखते हैं. जैसे–घट चेष्टावाची इत्यादिरूपसे शब्दनयका अर्थ कहा है. इसीतरहसे घटादि अर्थपने जो वर्ते अर्थात् विद्यमान रूपसे शब्दके अर्थका अवलम्बन करके प्रवर्त्ते. या. जिस २ शब्दका वाच्य अर्थ नहीं है. जिस

वस्तु में शब्दार्थपने की प्राप्ति नहीं है. वह वस्तु वस्तुरूप नहीं है: जिस शब्दार्थ में एक पर्याय भी न्यून हो उस वस्तु को एवंभूतनय वस्तुपने नहीं मानता. इसवास्ते शब्दनय तथा समाभिरूढनयसे एवं-भूतनय विशेषान्तर है.

एवंभूतनय घट स्त्रीके मस्तक परहो पांनी लानेकी क्रिया निमित मार्ग में आताहो पांनी से संयुक्त हो उसको घट मानता है. परन्तु घरके कौंनेमें रक्खा हुवा घट है उसको घटपने नहीं मानता क्यो कि वह घटपने की क्रिया का अकर्ता है. जो स्त्री के मस्तक पर चढा हो चेष्टा सहित हो उसीको घट शब्द से बुलावे अन्यथा घट नहीं कहता. जैसे—सामान्य केवली जो ज्ञानादि गुण पने समान है उसको समभिरूढनय अरिहन्त कहे परन्तु एवंभूत-नय जो समोवसरणादि अतिसय सम्पदा सहित. इन्द्रादि से पूजा-सत्कार सहित हो उसी को अरिहन्त कहे अन्यथा नहीं कहता, वाच्य वाचक की पूर्णता को मानता है इति एवंभूत नय स्वरूप.

यह सातों नय का स्वरूप विशेषावश्यक सूत्र के अनुसार कहा है. इसमें नैगम के ७, संग्रह के ६ या १२, व्यवहार के ८ या १४, ऋजुसूत्र के ४ या ६ शब्द के ७, समभिरूढ के २, और एवं भूतनय का, १ भेद इस तरह सब भेदों की व्याख्या की है. ग्रन्थान्तर में सात सो भेद भी कहे हैं. ।

॥ स्याद्वादरत्नाकरात् नयस्वरूपः ॥

एवमेव स्याद्वादरत्नाकरात् पुनर्लक्षणात उच्यते नीयते येन श्रुताख्यप्रामाण्यविषयीकृतस्यार्थस्य शस्तादितरांशौदासीन्यतः

सम्प्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः । स्वाभिप्रेतादेशादपरांशापलापी पुनर्नयाभासः स समासतः द्विभेदः द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकः आद्यो नैगमसंग्रहव्यवहारऋजुसूत्र भेदाच्चतुर्द्धा केचित् ऋजुसूत्रं पर्यायार्थिकं वदन्ति ते चेतनांशत्वेन विकल्पस्य ऋजुसूत्रेग्रहणात् श्रीवीरसासने मुख्यतः परिणतिचक्रस्यैव भावधर्मत्वेनांगीकारात् तेषां ऋजुसूत्रः द्रव्यनये एव धर्मयोर्धर्मिणो र्धर्मधर्मिणोश्च प्रधानोपसर्जन आरोपसङ्कल्पांशादिभावेनानेकमग्रहणात्मको नैगमः सत्चैतन्यमात्मनीतिधर्मयोः गुणपर्यायवत् द्रव्यमिति धर्मधर्मिणोः क्षणमेको सुखी विषयाशक्तो जीव इति धर्मधर्मिणोः सूक्ष्मनिगोदीजीवसिद्धसमानसत्ताकः अयोगीनो संसरीति अंशग्राही नैगमः धर्माधर्मादिनामेकान्तिकपार्थक्याभिसन्धिर्नैगमाभासः ।

अर्थ—अब स्याद्वादरत्नाकर ग्रन्थ से नय का स्वरूप लिखते हैं. श्रुतज्ञान के स्वरूप से प्राप्त किया जो पदार्थ के अंशविषयी ज्ञान और इस से इतर जो दुसरा अंश उस दुसरे अंश प्रति उदाशीनता वाले का जो अभिप्राय विशेष उसको नय कहते हैं. अर्थात् वस्तु के एक अंश को ग्रहण कर के अन्य से उदासी पने रहे उसको नय कहते हैं. और एक अंश को मुख्य कर के दूसरे अंश को उत्थापे—निषेध करे उस को नयाभास (कुनय) कहते हैं.।

नय के मुख्य दो भेद हैं. (१) द्रव्यार्थिक (२) पर्यायार्थिक. द्रव्यार्थिक के चार भेद हैं. (१) नैगम, (२) संग्रह, (३) व्यवहार, (४) ऋजुसूत्र. कई आचार्य ऋजुसूत्र नय को पर्यायार्थिक भी कहते हैं. इस लिये द्रव्यार्थिक के तीन भेद भी कहे हैं.

नैगमनय का स्वरूप कहते हैं। जो धर्म को प्रधानपने या गौनपने अथवा धर्मी को प्रधानपने या गौनपने तथा धर्म धर्मी दोनोंको प्रधानपने या गौनपने माने जो धर्म की प्रधानता है वह पर्याय की प्रधानता हुई और धर्मी की प्रधानता है वह द्रव्य की प्रधानता हुई, इसी तरह गौनता. और धर्मधर्मी की प्रधानता, गौनत है वह द्रव्य, पर्याय का प्रधान, गौनपना है ऐसे प्रधान, गौनपने की गवेषणारूप ज्ञानोपयोग उस को नैगम-नय कहते हैं, उस के बोध को नैगम बोध कहते हैं। जैसे

सत्, चैतन्य इन दो धर्मों में एक की मुख्यता और दुसरे की गौनता अंगीकार करे उस को नैगम कहते हैं. यहां चेतन्य नामक जो व्यंजन पर्याय है उस को प्रधानपने गने क्यो कि चेत-न्यता है वह विशेष गुण है और सत्त्व–अस्तित्व नामक व्यंजन पर्याय सब द्रव्यों में समानरूप से है. इस लिये गौनपने समझे यह नैगमनय का पहला भेद है.।

तथा " वस्तु पर्यायवद् द्रव्यं " यह वाक्य धर्मी नैगम नय का है.। यहां " पर्यायवत् द्रव्यं " ऐसी वस्तु है इसमें द्रव्य का मुख्यपना है. और " वस्तु पर्यायवत् " वाक्य में वस्तु का गौनपना तथा पर्याय का मुख्यपना है. यह उभयगोचरता है वास्ते यह नैगम नय का दूसरा भेद है.।

क्षणमेक सुखी विषयाशक्तो जीवः इति धर्मधर्मीणोरिति " यहां विषयाशक्त जीव नामक धर्मी की मुख्यता विशेष रूप से है

और सुख लक्षण धर्म की प्रधानता विशेषण रूप से है यह विशेष विशेषण भाव से धर्मधर्मी को अवलंबन कर के नेगम नय का तीसरा भेद कहा.

धर्मधर्मी दोनों को आलम्बन, ग्रहण करने से सम्पूर्ण वस्तु ग्रहण होती है और तभी वह ज्ञान प्रमाण हो सक्ता है. अर्थात् द्रव्य, पर्याय दोनों का अनुभव करता हुवा जो ज्ञान है वह प्रमाण होता है यहां दोनों पक्ष के विषय एक की गौनता और दुसरे की मुख्यता का ज्ञान होता है इसलिये उसको नय कहते है. । तथा सूक्ष्मनिगोद के जीव समान सत्तावान् है और अयोगी केवली को संसारी कहना यह अंश नैगम नय है. ।

नैगमाभास—वस्तु में अनेक धर्म है. उस को एकान्त-पने माने परन्तु एक दूसरे को सापेक्ष न माने अर्थात् एक धर्म को माने और दूसरे को न माने उसको नेगमाभास कहते हैं. यह दुर्नय है. क्यों कि अन्य नय की गवेषणा नहीं करता. जैसे—आत्मा में सत्त्व, चेतन्यत्व दोनों भिन्न भिन्न है जिस में एक मान्य और दूसरा अमान्य करे उसको नैगमाभास कहते हैं. यह नैगम-नय का स्वरूप कहा.

यथाऽऽत्मनि सत्त्व चैतन्ये परस्परं भिन्ने सामान्यमात्रग्राही सत्तापरामर्शरूपसङ्ग्रहः स परापरभेदात् द्विविधः तत्र शुद्धद्रव्य सन् मात्रग्राहकः परसंग्रहः चेतनालक्षणो जीवः इत्यपरसङ्ग्रहः सत्ताद्वैतं स्वीकुर्वाणः सकलविशेषान् निराचक्षाणः सङ्ग्रहा-भासः सङ्ग्रहस्यैकत्वेन ' एमेआया " इत्यभिधानात् सत्ताद्वैत

एव आत्मा ततः सर्वविशेषाणां तदितराणां जीवाजीवादि-द्रव्याणामादर्शनात् द्रव्यत्वादिनावान्तरसामान्यानि मन्वान-स्तदभेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानः परापरसंग्रह धर्माधर्मा-काशपुद्गलजीवद्रव्याणामैक्यं द्रव्यत्वादिभेदादित्यादिद्रव्यत्वा-दिकं प्रतिजानानस्तदविशेषान् निन्हुवानस्तदाभासः यथा द्रव्यमेव तत्त्वं तत्त्वपर्यायाणाम् ग्रहणाद्विपर्यासः इति संग्रहः।

अर्थ—संग्रहनय का स्वरूप कहते हैं. सामान्य मात्र, समस्तविशेष रहित सत्यद्रव्यादि को ग्रहण करने का स्वभाव है और पिंडपने विशेष रासि को ग्रहण करता है परन्तु व्यक्तरूप से ग्रहण नहीं करता स्वजाति का देखा हुवा इष्ट अर्थ उसको अवि-रोधपने विशेष धर्म को एक रूप से ग्रहण करता है. उसको संग्रहनय कहते हें. इस के दो भेद है (१) परसंग्रह (२) अपरसंग्रह "अशेषविशेषोदासीनं भजमानं शुद्धद्रव्यं सन्मात्र-मभिमन्यमानः परसंग्रहः इति" जो समस्त विशेष धर्म स्थापना की भजना करता हुवा अर्थात् विशेषपने को अग्रहण करता हुवा शुद्ध द्रव्य की सत्ता मात्र को माने जैसे—द्रव्य यह परसंग्रह है. विश्व एक सत पना है ऐसा कहने से अस्तिपने के एकत्व का ज्ञान होता है अर्थात् सव पदार्थ का एकत्वरूप से ग्रहण हो उसको संग्रहनय कहते है.।

जो सत्ता का अद्वैत स्वीकार करते है और द्रव्यान्तर भेद नहीं मानते समस्त विशेष भाव को नहीं ग्रहण करके वस्तु को मानने वाले अद्वैतवादि वेदान्त, सांख्यदर्शनी परसंग्रह अभास है.

क्यों कि वस्तु प्रत्यक्ष भेद होने पर भी द्रव्यान्तरपने को नहीं मानते है. इस लिये उनको संग्रहाभास कहते है. । जैन दर्शन विशेष सहित सामान्य ग्राही है. ।

" द्रव्यत्वादिनयान्तरसामान्यानि मत्त्वा तद्भेदेषु गजनिमीलिकामवलम्बमानः अपरसंग्रहः " जो जीवाजीवादि द्रव्य को अवान्तर सामान्यरूप से मानता हैं. परन्तु जीवविषय प्रत्येक जीव की विशेषतारूप जो भव्य, अभव्य सम्यक्त्वी, मिथ्यात्वी, नर, नारकादि पर्याय आदि भेद है. उस को " गजनिमीलिका " मदोनमत्तता से नहीं गवेषता उस को अपरसंग्रह कहते हैं. और द्रव्य को सामान्यरूप से मानता है. परन्तु द्रव्य का जो परिणामिकतादि धर्म है उसको नहीं मानता वह अपरसंग्रहाभास कहलाता है. यह संग्रहनय का स्वरूप कहा.

संग्रहे च गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसन्धिना क्रियते स व्यवहारः, यथा वत् सत् तत् द्रव्यं पर्यायश्चेत्यादि यः पुनरपरमार्थिकं द्रव्यपर्यायप्रविभागमभिप्रैति स व्यवहाराभासः चार्वाकदर्शनमिति व्यवहारदुर्नयः ।

अर्थ—व्यवहारनय कहते हैं. संग्रहनय से ग्राह्य जो वस्तु का सत्यादि धर्म उस को गुणभेद से विवेचन करता हुवा भिन्न २ कहे और पदार्थ की गुणप्रवृत्ति को मुख्यपने माने उस को व्यवहारनय कहते हैं. जैसे—जीव, पुद्गलादि द्रव्य के पर्याय का क्रमभावी और सहभावी दो भेद हैं. जिस में जीव दो प्रकार के हैं. सिद्ध और संसारी इसी तरह पुद्गल के दो भेद हैं. परमाणु

और स्कंध इत्यादि कार्य भेद से भिन्नपना माने तथा. क्रमभावी पर्याय के दो भेद (१) क्रियारूप (२) अक्रियारूप इस तरह सामर्थादि गुणभेदरूप विभाग करना इस को व्यवहारनय कहते हैं. और जो परमार्थ विना द्रव्य पर्याय का विभाग करते हैं. वह व्यवहाराभासनय समझना. यथा–दृष्टान्त.

कल्पना कर के भेद विवेचन करनेवाले चार्वाक दर्शनादि वे व्यवहारनय का दुर्नय है. जैसे–जीव सप्रमाणरूप से सिद्ध है. परन्तु लोक प्रत्यक्ष दृष्टीगोचर नहीं होता इस लिये जीव नहीं एसा कहते हैं. और जगत् में पंचभूतादि वस्तु नहीं है ऐसी कल्पना करके बालजीवों को कुमार्ग में प्रवर्ताते हैं. इस को व्यवहारदुर्नय कहते हैं. यह व्यवहारनय का स्वरूप कहा. ।

ऋजु वर्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्रधान्यतः सूत्रयति अभिप्रायः ऋजुसूत्रः । ज्ञानोपयुक्तः ज्ञानी दर्शनोपयुक्तः दर्शनी, कषायोपयुक्तः कषायी, समतोपयुक्तः सामायिकी, वर्तमानापलापी तदाभासः यथा तथागतमतः इति ॥

अर्थ—ऋजुसूत्र नय कहते हैं. । ऋजु–सरलपने अतीत अनागत की गवेषणा नहीं करता हुवा केवल वर्तमान समय वर्ती पदार्थ के पर्याय मात्र को प्रधानरूप से माने उस को ऋजुसूत्रनय कहते है. जैसे–ज्ञानोपयोग सहित वर्ते वह ज्ञानी, दर्शनोपयोग सहित को दर्शनी, कषायपने वर्ते वह कषायि, समता उपयोग सहित वर्तने वाळे को सामायिक यह ऋजुसूत्र नय का वाक्य है. ।

प्रश्न—इस शब्दार्थ से तो ऋजुसूत्रनय और शब्दनय एकही प्रतीत होता है.

उत्तर— विशेषावश्यक में कहा हैं. " कारण यावत् ऋजुसूत्रः " ज्ञान कारणरूप प्रवर्तता हुवा ऋजुसूत्रनय ग्राही है- और वही ज्ञायकता—जाननारूप काय में प्रवर्तमान होने से उसको शब्दनय कहते हैं.

वर्तमानकाल अपलापी को ऋजुसूत्राभास कहते है. जैसे अस्ति भाव को नास्तिभाव कहे अथवा विपरीत भाव से कहे यथा जीव को अजीव कहे, अजीव को जीव कहे इत्यादि यह गत-बौद्धदर्शन का मन्तव्य है वे जीव द्रव्य सदा सर्वदा अस्तिरूप है जिसको पर्याय के पलटने से द्रव्य का सर्वथा विनाश मानते हैं यह ऋजुसूत्रनयाभास हैं इति ऋजुसूत्रनयः ।

एकपर्यायप्रागभावेन तिरोभाविपर्यायग्राहकः शब्दनयः, कालादिभेदन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपाद्यमानः शब्दः, जलाहरणादिक्रियासामर्थ एव घटः न मृत्पिन्डादौ तत्त्वार्थवृत्तौ शब्दवशादर्थप्रतिपत्तिः तत्कार्येधर्मे वर्तमानवस्तु तथामन्त्रानः शब्दनयः शब्दानुरूपं अर्थपरिणतं द्रव्यमिच्छति त्रिकालत्रिलिंग त्रिवचनप्रत्ययप्रकृतिभिः समन्वितमर्थमिच्छति तद्भेदे तस्य तमेव समर्थमाणस्तदाभासः ।

अर्थ—शब्दनय कहते है. ॥ वस्तु की एक पर्याय प्रगट दिखने से और दूसरे शब्दवाचक पर्याय के तिरोभाव—अप्रगट होनें पर भी उस पर्याय को ग्रहण करता है. अथवा तीन काल

तीन लिंग, तीन वचन के भेद से शब्द का भेदपना करके उस भेदपने अर्थ कहे या जलाहरणादि सामर्थ को घट कहे. तथा– कुंभ के चिन्ह–पर्याय सम्पूर्ण प्रगट नहीं होने पर भी उसको नाम सहित बुलावे अर्थात् कार्य के सामर्थपने को ग्रहण कर के वस्तु माने परन्तु मिट्टी के पिंडको घट नहीं मानता उस को शब्दनय कहते हैं. और नैगम संग्रह नय सत्ता योग्यता अंशग्राही है. तत्वार्थ टीका में कहा है–शब्द के अनुयायी अर्थ प्रतिपादन करना और वही अर्थ वस्तु में धर्मपने प्रगट हो उसको वस्तुमाने अर्थात् शब्दानुयायी अर्थ परिणति को वस्तु कहे. लिंगादि भेद से अर्थ का भेद है उस भेद सहित धर्म को वस्तु माने उस को शब्दनय कहते हैं. और वस्तु का शब्दानुयायी अर्थ परिणति से विपरीत समर्थन करे उस को शब्दनयाभास कहते है. यह शब्दनय का स्वरूप कहा. ।

एकार्थावलंबिपर्यायशब्देषु निरूक्तिभेदन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढः । यथा इन्दनादिन्द्रः, शकनाच्छक्रः, पुरदारणात् पुरंदरः इत्यादिषु । पर्यायध्वनिनामाभिधेयनानात्वमेव कक्षीकुर्वाणस्तदाभासः, यथा इन्द्रः शक्रः, पुरंदरः इत्यादि भिन्नाभिधेये. ।

अर्थः—अब समभिरूढ नय का स्वरूप कहते है. । एक पदार्थ को ग्रहण कर के उसके एकार्थावलम्बी जितने नाम होते हैं उतने पर्यायनाम होते है और उतने हीं निर्युक्ति, व्यत्पत्ति तथा अर्थ में भेद होते हैं. उस अर्थ को सम्यक प्रकार से आरोहन करे

अर्थात् पूर्वोक्त अर्थ संयुक्त हो उसको समभिरूढ नय कहते हैं. जैसेइदिधातु परमैश्वर अर्थ है उस परमैश्वर्यवान को इन्द्र कहे. तथा–शकन–नवी २ शक्ति युक्त हो उसको शक्र कहते हैं. पुर=दैत्य दर=विदारे उसको पुरंदर कहते हैं. शचि=इन्द्राणी. उसका पति= स्वामी उसको शचिपति कहते हैं. ये सब धर्म इन्द्र में हैं. और देवलोक का स्वामी हैं इस लिये इन्द्र ऐसे नाम से संबोधन करते हैं परन्तु दूसरे केवल नामादि इन्द्र है. उनको उस नाम से नहीं बुलाते किन्तु उनके जितने पर्याय नाम है उन का भिन्न २ अर्थ करे परन्तु एकार्थ न समझे उसको समभिरूढ नय कहते हैं. इति समभिरूढनयः ।

एवं भिन्नशब्दवाच्यत्वाच्छब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूतक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतः । यथा इन्दनमनुभवन्निंदः, शकनाच्छक्रः, शब्दवाच्यतया प्रत्यक्षस्तदाभासः । तथा विशिष्टचेष्टाशून्यं घटाख्यवस्तुनः घटशब्दवाच्यं घटशब्दद्रव्यवृत्तिभूतार्थशून्यत्वात् पटवदित्यादि. ।

अर्थ—एवंभूतनय का स्वरूप कहते हैं. । शब्दनय प्रवृत्ति निमित जो क्रिया उसके विशिष्ट अर्थ संयुक्त वाच्य धर्म से प्राप्त हो अर्थात् कारण कार्य धर्म सहित हो उसको एवंभूत नय कहते हैं. ऐश्वर सहित हो वह इन्द्र, शक्ररूप सिंहासन पर बैठा हो तब शक्र, इन्द्राणी के साथ बैठा हो उस समय सचिपति अर्थात् जितने शब्द वे पर्यायार्थ भाव को प्राप्त हो वैसे नाम से संबोधन करे और जो पर्यायार्थ न दिखे उसको उस नाम से नहीं कहे. जहां तक एक

पर्याय भी न्यून हो उस को समभिरूढ नय कहते हैं. और शब्द सम्पुर्ण पर्याययुक्त हो उसको एवंभूतनय कहते हैं.

जिस पदार्थ के नाम भेद की भिन्नता देखकर पदार्थ की भिन्नता कहे उसको एवं भूतनयाभास कहते हैं. नाम भेदसे तो वस्तु भिन्न ही होती है. जैसे—हाथी, घोडा, हरिण भिन्न है इस-तरह भिन्नपना माने. या अर्थ भिन्नतारूप घटसे पट भिन्न है इसीतरह इन्द्रसे पुरन्दर भिन्न माने वह एवंभूतनय का दुर्नय है. इति एवंभूतनयः। यह सात नय की व्याख्या कही।

अत्र आद्य नयचतुष्टयमविशुद्धं पदार्थप्ररूपणाप्रवणत्वात्, अर्थनय नामद्रव्यत्त्वसामान्यरूपा नयाः।शब्दादयोविशुद्धनयाः शब्दावलंबार्थमुख्यत्वादाद्यास्ते तत्त्वभेदद्वारेण वचनमिच्छन्ति शब्दनयास्तावत् समानलिंगानां समानवचनानां शब्दानां इन्द्र-शक्रपुरंदरादिनां वाच्यं भावार्थमेवाभिन्नमभ्युपैति न जातुचित् भिन्नवचनं वा शब्दं स्त्री दाराः तथा आपो जलमिति समभिरूढ वस्तुप्रत्यर्थं शब्दनिवेशादिंद्रशक्रादीनां पर्यायशब्दत्वे न प्रतिजा-नीते अत्यंतभिन्नप्रवृत्तिनिमित्तत्वादभिन्नअर्थत्वमेवानुमन्यते घट-शक्रादिशब्दानामिवेति एवंभूतः पुनर्यथा सद्भाववस्तुवचन-गोचरं आपृच्छतीति चेष्टाविशिष्टएवार्थो घटशब्दवाच्यः चित्रा-लेख्यंतोपयोगपरिणतश्चचित्रकारः। चेष्टारहितस्तिष्ठन् घटो न घटः, तच्छब्दार्थरहितत्त्वात् कूटशब्दवाच्यार्थवन्नापि भुंजानः शयानो वा चित्रकाराभिधानाभिधेयश्चित्रज्ञानोपयोगपरिणति-शुन्यत्वाद्गोपालवदेवमभेदभेदार्थवाचिनो नैकैकशब्दवाच्यार्थात्-

लंबिनश्च शब्दप्रधानार्थोपसर्जनाच्छब्दनया इति तत्त्वार्थवृत्तौ। एतेषु नैगमः सामान्यविशेषोभयग्राहकः, व्यवहारः विशेषग्राहकः द्रव्यार्थावलंबिऋजुसूत्र विशेषग्राहकः एवं एते चत्वारो द्रव्यनयाः शब्दादयः पर्यायार्थिकविशेषावलंबि भावनयाश्चेति शब्दादयो नामस्थापनाद्रव्यनिक्षेपापवस्तुतया जानन्ति परस्पर सापेक्षाः सम्यक्दर्शनिप्रतिनयं भेदानां शतं तेन सप्तशतं नयानामिति अनुयोगद्वारोक्तत्वात् ज्ञेयं।

अर्थ—इन सातों नयों में प्रथम की चार नय अविशुद्ध है इसलिये पदार्थ को सामान्यरूप से कहने का अधिकारी है इन नयों को कहीं अर्थनय भी कहा है. अर्थशब्द को द्रव्यार्थीक समझना और शब्दादि तीन नय है वे शुद्धनय है. शब्दके अर्थ की इस में मुख्यता है. प्रथम की नय भेदरूपसे वचन-शब्द की वाच्यअर्थ है, और शब्दादिनय लिंगादि अभेदसे वचन अभेदक है तथा भिन्न भिन्न वचन को भिन्नार्थग्राही है. और समभिरूढ़ भिन्न शब्द है उस वस्तु के पर्याय को नहीं मानता तथा एवंभूत-नय भिन्न गोचर पर्याय को भिन्न मानता है। घटपने की चेष्टा संयुक्त हो उसको घट माने परन्तु एक कोने में रक्खे हुवे घट को घट नहीं मानता तथा चित्राम करता हो. उसी उपयोग में वर्तता हो उसी को चित्रकार कहे परन्तु वही चित्रकार सोया हो, खाता हो, बैठा हो उस समय उसको चित्रकार नहीं कहता। क्योंकि उस समय उपयोग रहित है. यह शब्द तथा अर्थ का भेदपना माननेवाला है. अर्थ की शुन्यतावाले शब्दको प्रमाण नहीं करता है.

शब्दप्रधान अर्थ जिसद्रव्य में गौनपने वर्ते वह शब्दादि तीन नय है. ऐसा तत्त्वार्थ की टीका में कहा है।

इन सातनयों में प्रथम की नैगमनय सामान्य विशेष दोनों को माननेवाली है. संग्रहनय सामान्य को मानती है. व्यवहारनय विशेष को मानती है. और द्रव्यालम्बी है। तथा ऋजुसूत्रनय विशेषग्राही है. ये चारों द्रव्यनय कहलाती है. और पिछली तीनों नय (शब्दादि) पर्यायार्थिक विशेषावलम्बी भावनय है. तथा शब्दादिनय नाम, स्थापना, द्रव्य इन प्रथम के तीन निक्षेपों को अवस्तु मानती है. " तिण्हं सद्दनयाणं अवत्थु " यह अनुयोग-द्वार सूत्र का वाक्य है।

इन सातनयों को परस्पर सापेक्षपने ग्रहण करता है वह सम्यक्त्वी है. अन्यथा मिथ्यात्वी समझना. पुनः एकैक नय के सौ सौ भेद होते हैं. इसतरह सातनयके सात सौ भेद होते हैं. यह अधिकार अनुयोगद्वार सूत्र में कहा है।

पूर्वपूर्वनयः प्रचुरगोचरः। परास्तु परिमितविषयः। सन्मात्रगोचरात् संग्रहात् नैगमो भावाभावभूमित्वाद् भूरि-विषयः, वर्तमानविषयाद् ऋजुसूत्राद्व्यवहारस्त्रिकालविषयत्वात् बहुविषयकालादिभेदेन भिन्नार्थोपदर्शनात् भिन्नऋजुसूत्रविप-रीतत्वान्महार्थः प्रतिपर्यायमशब्दमथभेदमभीप्सतः समभि-रूढाच्छब्दः प्रभूतविषयः प्रतिक्रियांभिन्नार्थं प्रतिजानानात् एवंभूतात् समभिरूढः महान् गोचरः। नयवाक्यमपि स्वविषये प्रवर्तमानं विधिप्रतिषेधाभ्यां सप्तभंगीमनुव्रजति।

अंशग्राही नैगमः, सत्ताग्राही संग्रहः, गुणप्रवृत्तिलोक प्रवृत्तिग्राही व्यवहारः, कारणपरिणामग्राही ऋजुसूत्रः, व्यक्त- कार्यग्राही शब्दः, पर्यायान्तरभिन्नकार्यग्राही समभिरूढः, तत् परिणामनमुख्यकार्यग्राही एवंभूतः, इत्याद्यनेकरूपो नयप्रचा- रः। " जावंतिया वयणपहा " तावंतिया चेव हुंति नयवावा " " इति वचनात् उक्तो नयाधिकारः।

अर्थ--पूर्व २ नयप्रचुर विस्तारवाली है अर्थात् नैगमनय का विस्तार बहुत है इससे परा=उपरकीनय परिमित विषयि है अर्थात् न्यून विषयि है. क्योंकि सत्तामात्र ग्राही संग्रहनय है याने अस्ति सत्ता ग्राही संग्रह नय है. और नैगमनय सद्भाव अथवा संकल्परूप असद्भाव सबका ग्राही है. अथवा सामान्य विशेष दोनो धर्मग्राही है. इस वास्ते नैगम नय को प्रचुर विषयी कहा है, संग्रहनय सत्तागत सामान्य विशेष उभयग्राही है, व्यवहारनय सत् एक विशेषग्राही है इस लिये संग्रहनयसे व्यवहारनय का विषय कम है. और व्यवहारनयसे संग्रहनय का विषय अधिक है. ऋजु- सूत्रनय वर्तमान विशेष धर्मग्राही है. व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनय कालविषय ग्राहक है इस लिये व्यवहारनयसे ऋजुसूत्रनय अल्प विषयी है. शब्दनय काल, वचन, लिंग से विवेचन करता हुवा अर्थग्राही है. और ऋजुसुत्रनय वचन लिंग से भेदपने नहीं करता इसवास्ते ऋजुसूत्रनय से शब्दनय अल्पविषयि है ऋजुसूत्रनय इससे अधिकविषयि है. शब्दनय सब पर्यायो में से एक पर्याय ग्राही

है, समभिरूढनय व्यक्त धर्मके वाचक पर्याय को ग्रहण करता है. इसवास्ते शब्दनयसे समभिरुढ अल्प विषयि है. समभिरूढनय पर्याय के सब कालकी गवेषणा करता है. और एवंभूतनय प्रतिसमय क्रिया भेदसे भिन्न पदार्थपना मानता है इसलिये समभिरूढनयसे एवं भूतनय अल्पविषयि है. और इससे समभिरूढनय अधिक विषयि है.

नय वचन है वह स्वस्वरूपसे अस्ति है परनय के स्वरूप की नास्ति है। इस तरह सर्वनय की विधि प्रतिषेध करनेसे सप्तभंगी उत्पन्न होती है परन्तु नयकी सप्तभंगी विकला देशी होती है. अर्थात् सप्तभंगीमें से पीछेके चार भांगे जो विकलादेशी कहे हैं. वे होते है सकलादेशी नहीं होते और जो सकलादेशी सप्तभंगी है वह प्रमाण है इसलिये नयकी सप्तभंगी नहीं होती.

उक्तंच रत्नाकरावतारिकायां "विकलादेश स्वभावादि नय सप्तभंगी वस्त्वंशमात्रप्ररुपकत्वात् सकलादेश स्वभावा तु प्रमाण सप्तभंगी सम्पूर्णवस्तु स्वरूपप्ररूपकत्वात्" यह यथा योग्यपने नयाधिकार कहा ॥

जीवमें सातनय घटाते हैं.

(१) नेगमनयवाला कहता है. गुणपर्याय और शरीर सहित है वे जीव इस नयवालेने शरीरके साथ दुसरे पुद्गल व धर्मास्ति कायादि द्रव्योका जीवमें ग्रहण किया.

(२) संग्रहनयवाला कहता है असंख्यात प्रदेशी है वह जीव अर्थात् इस नयवालेने एक आकाश द्रव्यको छोडके शेष सव द्रव्य जीवमें ग्रहण किये.

(३) व्यवहारनयवाला कहता है. जो कामादि विषय या पुन्यकी क्रिया करे वह जीव इस नयवालेने धर्मास्तिकायादि तथा सर्व पुद्गलों को छोड़ा। परन्तु पांच इन्द्री, मन, लेश्या, वे पुद्गल जीवमें ग्रहण किये क्योंकि विषयग्राही इन्द्री है वह जीव से पृथक् नहीं है.

(४) ऋजुसूत्रनयवाला कहता है. उपयोगवान है वह जीव इसने इन्द्री आदि पुद्गलो को ग्रहण नहीं किया परन्तु ज्ञान अज्ञान का भेदभाव नहीं माना किन्तु उपयोग सहित को जीव माना है.

(५) शब्दनयवाला कहता है. भावजीव है वही जीव है किन्तु नाम, स्थापना, द्रव्य निक्षेप को वस्तु रूप नहीं मानता. ऋजुसूत्रनय चारोनिक्षेप संयुक्त को वस्तु मानता है. शब्दनय केवल भाव निक्षेपग्राही है.

(६) समभिरूढनयवाला कहता है. ज्ञानादि गुण संयुक्त है वह जीव है इस नयनेवालेने मति श्रुतिज्ञान जो साधक अवस्थाका गुण है वे सव जीवमे सामिल किये.

(७) एवंभूतनयवाला कहता है. अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र शुद्ध सत्तावाला है वह जीव इस नयवालेने सिद्धावस्था के गुणो को ग्रहण किया।

इति नयाधिकारः

॥ प्रमाणमाह ॥

सकल नयसंग्राहकम् प्रमाणं प्रमाता आत्मा प्रत्यक्षादि प्रमाणसिद्धः चैतन्यस्वरूपपरिणामी कर्ता साक्षाद् भोक्ता स्वदेहपरिणामः प्रतिक्षेत्रभिन्नत्वेनैव पञ्चकारणसामग्रीतः सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्र साधनात् साधयतेसिद्धिः। स्वपर व्यवसायिज्ञानं प्रमाणं तद् द्विविधं प्रत्यक्ष परोक्ष भेदात्स्पष्टं प्रत्यक्षं परोक्षमन्यत अथवा आत्मोपयोगत इन्द्रिय द्वारा प्रवर्तते न यज्ज्ञानं तत्प्रत्यक्षं, अवधि मनःपर्यायौ देशप्रत्यक्षौ, केवलज्ञानं तु सकलप्रत्यक्षं, मतिश्रुतेपरोक्षे, तच्चतुर्विधं अनुमानोपमानागमार्थापित्तिभेदात्, लिङ्गपरामर्शोऽनुमानं लिङ्गं चाविनाभूतवस्तुकं नियतं ज्ञेयं यथा गिरिगुहिरादौ व्योमावलम्बिधुमलेखां द्रष्टवा अनुमानं करोति, पर्वतो वहनिमान् धूमवत्त्वात्, यत्र घुमस्तत्राग्निः यथा महानसं, एवं पञ्चावयवशुद्धं अनुमानं यथार्थज्ञानकारणं, सदृश्यावलम्बनेनाज्ञातवस्तुनां यज ज्ञानं उपमान ज्ञानं, यथा गौस्तथा गवयः गौसादृश्येन अद्रष्टगवयाकारज्ञानं उपमानज्ञानं, यथार्थोपदेष्टा पुरुष आप्तः स उत्कृष्टतो वीतरागः सर्वज्ञएव। आप्तोक्तं वाक्यं आगमः, राग द्वेषाज्ञानभयादि दोषरहितत्वात् अर्हतः वाक्यं आगमः, तदनुयायिपूर्वापराविरुद्धं मिथ्यात्वासंयमकषा यभ्रांत्तिरहितं स्याद्वादोपेतं वाक्यं अन्येषां शिष्टानामपि वाक्यं आगमः। लिङ्गग्रहणाद् ज्ञेयज्ञानोपकारकं

अर्थापत्तिप्रमाणं, यथा पीनो देवदत्तो दिवा न भुङ्क्ते तदा अर्थाद्रात्रौ भुङ्क्ते एव इत्यादि प्रमाण परिपाटी गृहीत जीवा जीवस्वरूपः सम्यकज्ञानी उच्यते ।

अर्थ—प्रमाण का स्वरूप कहते हैं. सब नयों के स्वरूप को ग्रहण करनेवाळा तथा सब धर्म का जानपना हो जिस में एसा जो ज्ञान वह प्रमाण हैं. माप विशेष को प्रमाण कहते हैं. अर्थात् तीन जगत के सब प्रमेय को मापने का जो प्रमाण वह ज्ञान है और उस प्रमाण का कर्ता आत्मा प्रमाता है. वह प्रत्यक्षादि प्रमाण से सिद्ध है. चैतन्य स्वरूप परिणामी है पुनः भवन धर्म से उत्पाद व्यय रूप को परिणमन होता है इस लिये परिणामिक है, कर्ता है, भोक्ता है. जो कर्ता होता है वही भोक्ता होता है. बिना भोक्ता के सुखमयी नहीं कहलाता यह चैतन्य संसारपने स्वदेह परिणामी है. प्रत्येक शरीर भिन्नत्वे भिन्न जीव है. वे पांच प्रकार की सामग्री पाकर सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन, सम्यक् चारित्र के साधन से सम्पूर्ण अविनाशी, निर्मल, निःकलंक, असहाय, अप्रयास, स्वगुणनिरावरण, अक्षय, अव्यावाघ सुखमयी ऐसी सिद्धता निष्पन्नता उपार्जन करें यही साधन मार्ग है ।

स्व, पर का व्यवसायी अर्थात् स्व आत्मा से भिन्न पर जो अनन्त जीव तथा धर्मादि का व्यवसायी—व्यवच्छेदक ज्ञान उस को प्रमाण कहते हैं. जिस के मुख्य दो भेद हैं. (१) प्रत्यक्ष (२) परोक्ष. स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं. इस से इतर अर्थात् अस्पष्ट ज्ञान को परोक्ष कहते हैं. अथवा आत्मा के उपयोग से

इन्द्रियों की प्रवृत्ति विना जो ज्ञान है उस को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं. जिसके दो भेद हैं (१) देश प्रत्यक्ष (२) सर्व प्रत्यक्ष. अवधि तथा मनःपर्यव ज्ञान देश प्रत्यक्ष है. क्यों कि अवधिज्ञान एक पुद्गल परमाणुं के द्रव्य, क्षेत्र काल और भाव के कितनेक पर्यायों को देखता है. और मनःपर्यव ज्ञान मन के पर्यायों को प्रत्यक्ष देखता है परन्तु दूसरे द्रव्यों को नहीं देखता इसी लिये दोनों ज्ञान को देश प्रत्यक्ष कहा है वे वस्तु के देश को जानते हैं किन्तु सम्पूर्ण रूप से नहीं जानते. और केवलज्ञान है वह जीवाजीव, रूपी, अरूपी, सर्व लोकालोक, तीनों काल के भावों को प्रत्यक्ष रूप से जानता है इस लिये सर्व प्रत्यक्ष कहा है।

मति श्रुति ये दोनों ज्ञान अस्पष्ट ज्ञान है इस लिये ये परोक्ष है. परोक्ष प्रमाण के चार भेद हैं. (१) अनुमान प्रमाण (२) उपमान प्रमाण (३) आगम प्रमाण (४) अर्थापत्ति प्रमाण। चिन्ह से जिस पदार्थ की पहिचान हो उस को लिंग कहते हैं. उस के अवबोध से जो ज्ञान हो उस को अनुमान प्रमाण कहते हैं. जैसे पर्वत के सिखर पर आकाशावलम्बी धूवें की रेखा देखने से अनुमान होता है कि यहां अग्नि है. क्यों कि जहां धूवा होता है वहां अग्नि अवश्य होती है. आकाश को पहुंचती हुई जो धूम्र रेखा है वह विना अग्नि के नहीं हो शक्ति इस को शुद्ध अनुमान प्रमाण कहते हैं. यह प्रमाण मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है जो यथार्थ ज्ञान हो उस को मान "प्रमाण" कहते है. और अयथार्थ ज्ञान है वह प्रमाण नहीं है।

सदृशावलंबीपने विनाजानी वस्तु का ज्ञान प्राप्त हो जैसे–बैल=बलद सरीषी गाय यहां बैल से गाय की पहिचान हुइ इसको उपमा प्रमाण कहते हैं।

यथार्थ भावों का उपदेशक जो पुरुष उसको आप्त कहते है, उत्कृष्ट आप्त तो वीतराग रागद्वेष रहित सर्वज्ञ केवली हैं. उनके कहे हुवे वचनों को आगम कहते है. जो रागद्वेष तथा अज्ञान के देष से आगे पीछे या न्यूनाधिक वचन कहा जाय उस को आगम नहीं कहते. किन्तु अरिहंतो के वचन आगम प्रमाण है. उस के अनुयायी पूर्वापर अविरोध, मिथ्यात्व, असंयम, कषाय से रहित. भ्रान्ति विना स्याद्वाद संयुक्त साधक है वह साधक। बाधक है वह बाधक। हेय है वह हेय, उपादेय है वह उपादेय इत्यादि विवेचन सहित कहा हुवा है उस को आगम प्रमाण कहते हैं. उक्तं च " सुतं गणहररइवं, तदेव पत्तेयवुद्धरइयं च ।। सुअकेवलीणा रइयं अभिन्नदशपुव्विणा रइयं ॥ १ ॥ इत्यादि सदुपयोगी भवभीरू जगतजीवों के उपकारी ऐसे श्रुत आमनाय को धारन करनेवाले जो श्रुत के अनुसार कहे उनका वचन भी प्रमाणरूप है।

किसी फलरूप लिंग को ग्रहण कर के अनजान पदार्थ का निरधार करना उस को अर्थापत्ति प्रमाण कहते है. जैसे–देवदत्त का शरीर पुष्ट है वह दिन को नहीं खाता तब अर्थापत्ति से मालूम होता है वह रात को खाता होगा इसीसे शरीर पुष्ट है. इसको अर्थापत्ति प्रमाण कहते है. यह प्रमाण जाति से अनुमान प्रमाण का अंश है. इसालिये अनुयोगद्वारमें प्रथक नहीं कहा।

अन्य दर्शनीय प्रमाण मानते हैं वह असत्य है जैसे छे इन्द्रिय सन्निकर्ष से उत्पन्न हुवा जो ज्ञान उसको नयायिक प्रत्यक्ष प्रमाण मानते हैं. और परब्रह्म को इंद्रिय रहित मानते हैं. ज्ञानानन्दमयी मानते हैं. तब इन्द्रिय रहित ज्ञान है वह अप्रमाण हुवा इत्यादि अनेक युक्ती है इसवास्ते वह अप्रमाण है. और चारवाक मतवाले केवल एक इन्द्रिय प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते ह. इस तरह अन्य दर्शनीयों के अनेक विकल्प को हटाके सर्वनय, निक्षेप, सप्तभंगी, स्याद्वादयुक्त जीव अजीव वस्तु का सम्यग्ज्ञान जिसमें हो उस को सम्यग्ज्ञानी कहना यह ज्ञान का स्वरूप कहा ।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं । यथार्थहयोपादेयपरिक्षायुक्तज्ञानं सम्यग्ज्ञानं । स्वरूपरमणपरपरित्यागरूपं चरित्रं । एतद्रत्नत्रयीरूपमोक्षमार्गसाधनात्साध्यसिद्धिः इत्यनेनात्मनः स्वीयं स्वरूपं सम्यग्ज्ञानं ज्ञानप्रकर्षएवात्मलाभः ज्ञानदर्शनोपयोग लक्षण एवात्मा छद्मस्थानां च प्रथमं दर्शनोपयोगः केवलीनां प्रथम ज्ञानोपयोगः पश्चाद्दर्शनोपयोगः सहकारीकतृत्वप्रयोगात् उपयोगसहकारेणैव शेषगुणानां प्रवृत्त्यभ्युपगमात् इत्येवं स्वतत्वज्ञानकरणे स्वरूपोपादानं तथा स्वरूपरमणध्याने कत्वेनैव सिद्धिः ॥

अर्थ—श्री वीतराग के आगम से वस्तुस्वरूप को प्राप्त कर के उसके हेयोपादेय का निरधार करना उसको सम्यग्दर्शन कहते है. तत्त्वार्थसूत्र में कहा है—" तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं " तथा उत्तराध्यनसूत्रमें " जीवाजीवाय बंधो ॥ पुन्नं पावासवोतहा ॥

संवरो निज्झरा मुक्खो ।। संति एतीहिया नव ।। १ ।। तिहियाणं तु भावाणं सद्भावे ऊवएसणं ।। भावेण सद्दहंतस्स ।। समभं तिवियाहियं ।। २ ।। इत्यादि दशरूचीसे सब तत्त्वो को जानना, जीवादि पदार्थ की श्रद्धा—निरधार को सम्यगदर्शन करते हैं. सम्यगदर्शन धर्म का मूल है, तथा हेय छोड़ने योग्य है. उपादेय ग्रहण करने योग्य है. ऐसी परिक्षा सहित ज्ञान को सम्यगज्ञान कहते है. जिसमें हेयोपादेय संकोच अकरण बुद्धि नहीं है परन्तु उपादेय के उपयोग से ऐसी चिन्तवना हो कि अब कब करूंगा ? इस के विना कैसे काम चलेगा ? ऐसी बुद्धि नहीं है उस को संवेदन ज्ञान कहते हैं, इस से संवर हो ऐसा निश्चय नहीं है ।

स्वरूपरमण, परभाव रागद्वेष विभावादि के त्याग को चारित्र कहते हैं. यह रत्नत्रयीरूप परिणाम मोक्षमार्ग है । इस के साधन करने से साध्य जो परम अव्याबाधपद की सिद्धि प्राप्त होती है. आत्मा का स्व स्वरूप जो यथार्थ ज्ञान है. तथा चेतना लक्षण वही जीवत्वपना है, ज्ञान का प्रकर्ष बहुलतापन वही आत्मा को मिलता है, ज्ञानदर्शन उपयोग लक्षण आत्मा है. छद्मस्थ को पहले दर्शन उपयोग है और पीछे ज्ञानोपयोग है, तथा केवली को पहले ज्ञानोपयोग है और पीछे दर्शनोपयोग है. जो जीव नवीन गुण प्राप्त करता है उस का केवली को ज्ञानोपयोग उसी समय होता है पीछे सहकारिकतृत्व (सहायक) प्रयोग होनेसे दर्शन उपयोग होता है । उपयोग सहकारणैव—उपयोग की मददसे शेष गुणों की प्रवृत्ति का ज्ञान होता है. अर्थात् विशेष धर्म है

वह सामान्य के आधारवर्ती है इसके सहित जाने यह विशेष के साथ सामान्य का ग्रहण हुवा और सामान्य को भी विशेष सहित जाने यह सर्वज्ञ सर्वदर्शीपना समझना इसतरह स्वतत्त्व का ज्ञान प्राप्त करनेसे स्वधर्म की प्राप्ति होती है तथा स्वरूप की प्राप्तिसे स्वरूपमें रमणता होती है और उस रमणतासे ध्यान की एकत्वता होती है अर्थात् निश्चयज्ञान, निश्चयचारित्र, निश्चयतप पना प्राप्त होता है और इससे मोक्ष की प्राप्ति होती है।

तत्र प्रथमतः ग्रन्थिभेदं कृत्वा शुद्धश्रद्धानज्ञानी द्वादश कषायोपशमः स्वरूपैकत्वध्यानपरिणतेन क्षपकश्रेणीपरिपाटीकृतघाति कर्मक्षयः, अवाप्तकेवलज्ञानदर्शनः, योगनिरोधात् अयोगीभावमापन्नः, अघातिकर्मक्षयानन्तरं समय एवास्पर्शवद्, गत्वा एकान्तिकात्यन्तिकानां वाधनिरूपाधिनिधिरूपं चरित्रानयोशाविनाशिसंपूर्णात्मशक्तिप्रागभावलक्षणं सुखमनुभवन् सिध्यति साद्यनं तं कालं तिष्टति परमात्मा इति एतत् कार्यं सर्वं भव्यानां॥

अर्थ—प्रथम ग्रन्थिभेद करके सुद्धश्रधावान तथा सुद्ध ज्ञानी जीव पहले तीन चोकड़ी का क्षयोपशम करके प्राप्त किया है चारित्र उस ध्यानसे एकत्व होकर क्षपकश्रेणी के अनुक्रमसे घातिकार्मो का क्षय करके केवलज्ञान केवलदर्शन को प्राप्तकर सयोगी केवळी गुणस्थानक पर जघन्य अन्तरमुहूर्त उत्कृष्ट आठ वर्ष न्यून पूर्वकोड वर्ष पर्यंत रह कर कोई जीव समुद्घात करता है और कोई नहीं भी करता परन्तु आवर्ज्जिकरण सब केवली करते है. जिसका स्वरूप कहते हैं।

आत्मप्रदेशों में रहे हुवे कर्मदल उनको पहले चलयमान करते हैं. पीछे उदीरणा करते हैं. और फिर भोगवकर निर्जरते हैं. केवली का जब तेरवे गुणस्थनक में अल्पायु रहता है उस समय आवर्जिकरण करते हैं. यथा–प्रतिसमय असंख्यातगुनी निर्जरा करने योग्य कर्मदल को आत्मवीर्य से चलायमान करे ऐसा जो वीर्य का प्रवर्तन उसको आवार्जिकरण कहते हैं।

इसतरह आवर्जिकरणकरता हुवा यदि तीन कर्मों का दल अधिक रहे तो समुद्घात करते हैं. अन्यथा समुद्घात नहीं करते. किन्तु आवार्जिकरण सब केवली करते हैं। तेरवे गुणस्थानक के अन्त में योग निरोधकरके अयोगी, अशरीरी, अनाहारी, अप्रकंप, घनीकृत आत्मप्रदेशी होकर पांच लघु अक्षर (अइउऋलृ) कालमान अयोगी नामक चवदमें गुणस्थानक पर ठहर कर शेष सत्तागत प्रकृती जो विद्यमान अविद्यमान है उस को स्तिवुक संक्रम से खपाके समस्त पुद्गल संग रहित होकर तत् समय आकाश प्रदेश की समश्रेणी अर्थात् दूसरे प्रदेश की श्रेणी को अस्पर्श करता हुवा लोकान्त–लोकके अन्तिम भागमें सिद्ध, कृतकृत, सम्पूर्णगुण, प्रागूभावी, पूर्णपरमात्मा, परमानंदी, अनन्तकेवलमयी, अनन्तदर्शनमयी, अरूपी सिद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। ऊक्तं च उत्तराध्ययन सूत्रे " कहिं पड़िहयासिद्धा । कहिं सिद्धा पयट्ठिया ॥ कहिं वोदि चइत्ताणं ॥ कत्थगंतूण सिज्झई ॥ अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥ इहवोदि चइत्ताणं तत्थगंतूण सिज्झई ॥ इत्यादि वे सिद्ध एकान्तिक, आत्यांतिक, अनाबाध, निरूपाधि, निरूपचरित,

अनायास, अविनासी, सम्पूर्ण आत्मशक्ति प्रगटरूप अनन्त सुखका अनुभवकर्ता है। और उनके प्रति प्रदेश में अव्याबाद सुख अनन्त है। उक्तं च उववाईसूत्रे " सिद्धस्स सुहोरासि ॥ सव्वद्धा पिण्डियं जह वज्जा ॥ सोणंतवग्गोभइयो ॥ सव्वागासे न माइज्जा ॥ १ ॥ इति वचनात् परमानन्द सुखके भोक्ता हैं. सादि अनन्तकाल पर्यंत परमात्मपने रहते हैं. और यही कार्य सब भव्य प्राणीयों को करने योग्य हैं. इसकी पुष्टी का कारण श्रुताभ्यास है इसीके लिये यह द्रव्यानुयोग नय स्वरूप को किंचित कहा है. यह जान पना जिस गुरूकी परम्परा से मैंने प्राप्त किया है उन गुरूवों की परम्पराको स्मर्ण करता हूं।

काव्य.

गच्छे श्री कोटिकाख्ये विशदखरतरे ज्ञानपात्रा महान्तः,
सूरि श्री जैनचन्द्राः गुरूतरगणभृत्शिष्यमुख्या विनीताः ॥
श्रीमत्पुण्यात्मप्रधानाः सुमतिजलनिधि पाठकाः साधुरंगाः
तच्छिष्या, पाठकेन्द्राः श्रुतरसरसिका राजसारा मुनीन्द्राः॥१॥

तच्चरणांवुजसेवालीनाः श्रीज्ञानधर्मधराः ॥ तत्शिष्यपाठकोत्तमदीपचन्द्राः श्रुतरसज्ञाः ॥ २ ॥ नयचक्रलेशमेतत्तेषां शिष्येण देवचन्द्रेण स्वपरावबोधनार्थं कृतं सदभ्यासवृद्धयर्थं ॥ ३ ॥ शोधयन्तु सुधियः कृपापराः, शुद्धतत्वरसिकाश्च पठंतु ॥ साधनेन कृतसिद्धिसत्सुखाः, परममंगलभावमश्नुते ॥ ४ ॥ इति श्री नयचक्र विवरणं समाप्तम् ॥

दोहा.

शुक्ष्मबोध विणु भाविकने । न होवे तत्व प्रतीत ॥
तत्त्वालंबन ज्ञान विण । न टले भवभ्रम भीत ॥ १ ॥

तत्त्व ते आत्मस्वरूप छे । शुद्ध धर्म पण तेह ॥
परभावानुग चेतना । कर्म गेह छे एह ॥ २ ॥

तजि परिपरणति रमणता । भज जिन भाव विशुद्ध ॥
आत्मभावथी एकता । परमानंद प्रसिद्ध ॥ ३ ॥

स्याद्वाद गुण परिणमन । रमता समता संग ॥
साधे शुद्धानंदता । निर्विकल्प रसरंग ॥ ४ ॥

मोक्षे साधन तणु मूल ते । सम्यग् दर्शन ज्ञान ॥
वस्तु धर्म अवबोध विणु । तुस खंडन सामान ॥ ५ ॥

आत्मबोध विणु जे क्रिया । ते तो बालकचाल ॥
तत्त्वार्थनी वृत्ति में । लेजो वचन संभाल ॥ ६ ॥

रत्नत्रयी विणु साधना । निष्फल कही सदीव ॥
लोकविजय अध्येनमें । धारो उत्तम जीव ॥ ७ ॥

इन्द्रिय विषय आसंसना । करता जे मुनी लिंग ॥
खूता ते भवी पंकमे । भाखे आचारंग ॥ ८ ॥

इम जाणी नाणी । न करे पुद्गल आस ॥
शुद्धात्म गुणमें रमें । ते पामें सिद्धि विलास ॥ ९ ॥

सत्वार्थ नय ज्ञान विनुं । न होय सम्यग् ज्ञान ॥
सत्य ज्ञान विण देशना । न कहे जिन भाण ॥ १० ॥

स्यादवाद यादी गुरु । तसु रस रसीया शिष्य ॥
योग मिले तो निपजे । पूरण सिद्ध जगीस ॥ ११ ॥

वक्ता श्रोता योगथी । श्रुत अनुभव रस पीन ।
ध्यान ध्येयनी एकता । करता शिव सुख लीन ॥ १२ ॥

इम जाणी शासनरुची । करजो श्रुत अभ्यास ॥
पामी चारित्र संपदा । लेहसो लील वीलास ॥ १३ ॥

दीपचन्द्र गुरुराजने । सुपसाये उल्लास ॥
देवचन्द्र भवि हितभणी । कीधो ग्रन्थ प्रकाश ॥ १४ ॥

सुणसे भणसे जे भविक । एह ग्रन्थ मनरंग ।
ज्ञानक्रिया अभ्यासनां । लहेशे तत्वतरंग ॥ १५ ॥

द्वादशसार नयचक्र छे । मल्लवादिकृत वृद्ध ॥
सप्तशतिनय वाचना कीधी तिहा प्रसिद्ध ॥ १६ ॥

अल्पमतिना चित्तमें । नावे ते विस्तार ।
मुख्य स्थूल नय भेदनो । भाष्यो अल्प विचार ॥१७॥

खरतर मुनिपति गच्छपति श्रीजिनचन्द्र सूरीस ॥
तास शीस पाठक प्रवर । पुण्यप्रधान मुनीस ॥ १८ ॥

तसु विनयी पाठक प्रवर । सुमति सागर सुसहाय ।
साधुरंग गुणसंनिधि । राजसागर उवज्झाय ॥ १९ ॥

पाठक ज्ञान धर्मगुणी । पाठक श्री दीपचन्द्र ॥
तान सीस देवचन्द्रकृत । भणता परमानंद ॥ २० ॥

॥ अनुवादकीय ग्रन्थ समाप्ति सवैया इकतीसा ॥

मे–घ ज्युं वर्षत ध्वनि, धारा अनुपम पुनि ।
घ–न ज्यू गर्जत घोर, हृदै हुलसायो है ॥
रा–ग द्वेष लेस नाहीं, मोह को प्रवेश नाहीं ।
ज–गत उद्धार सार, यही मन भायो है ॥
मु–नि वीच इन्द चन्द, सोहत आनंद कंद ।
नौ–शांच को निकन्दात्म, भाव प्रगटायो है ॥
त–रन तारन धीर, वीर को नमन करी ।
गुरु के चरण रज, सीस पै चढायो है ॥ १ ॥

ताहि के प्रसाद नय–चक्र अनुवाद कीनो ।
देवचन्द्र सूरि कृत, बालबोध भायो है ।
तत्त्वबोध हेतु **मुनि**, सेतु **सुन्दरज्ञान** पायो ।
फळवृद्धि काज **मेघ** हिय हुलसायो है ॥

तत्त्व के रसिक जेहि, ताते अनुरोध येहि ।
गुणग्राही होउ जाते, उच्चपद पायो है ॥
उत्तम वैसाख मास, अक्षय त्रितीय खास ।
समतोगणीस आठ, पांच (१९८५) को बनायो है ॥ २ ॥

श्रीमदुपाध्याय देवचन्द्रजी कृत नयचक्रसार का यह हिन्दी अनुवाद शा० लाधूरामजी तत् पुत्र मेघराज मुणोत फलोधीवालेने स्वपर हित के लिये बनाया है. अल्पज्ञाता के कारण न्यूनाधिक लिखा हो उसके लिये क्षमा प्रदान करेंगे सुज्ञेषु किम् बहुना ॥ श्रीरस्तु कल्याणमस्तु ॥

इति श्रीमद् देवचन्द्रजी कृत नयचक्रस्य हिन्दी अनुवाद समाप्तम् ॥

गोडवाड़ में किस बात की आवश्यक्ता है?

(१) गोडवाड़ में अविद्याका साम्राज्य वरत रहा है इस लिये सबसे पहले विद्या प्रचारकी आवश्यक्ता हैं। लडकों की निष्बत् लड़कियों को पढ़ाने की परमावश्यक्ता हैं कारण जहाँ तक भावि माताओं को अपने कर्त्तव्यका ज्ञान न हो वहाँ तक संसार सुधार होना असंभव हैं। गोबरखाना, ढ़ोलपर मैदानमें नाचना, अश्लिल गीत–गाल गाना, चतुराई न रखना और कलेशमय जीवन बीताना इत्यादि हानी कारक कुप्रथाओं कों देश निकाला देनेका सबसे पहिला सिधा और सरल उपाय कन्याओं को सुसंस्कारी सुशिक्षित सदाचारी और उद्योगी बनाना हैं कि वह अपनी संतान को सहज में सुधार सके। अतएव लड़का या लड़ाकियों के लिये विद्याशालाओं की जरूरत हैं?

(२) जैन जाति केवल एक व्यापार पर ही निर्भर हैं उस व्यापार की हालत दिन व दिन खराब होती जा रही हैं इस हालत में हमारे प्रत्येक कार्यों में खर्चा सदैव बढ़ता ही जा रहा हैं अगर इस में शीघ्रता से सुधार न हो तो जैन जाति का जीवन जोखममें ही समझना चाहिये। यह कार्य हमारे समाज के आगेवान व धनाढय लोगों के हाथ में हैं।

(३) जैन जाति के अग्रेसरों ने पूर्व जमाना में जैसे व्यापार की ओर लक्ष दिया था वैसे ही इस समय हुन्नर की ओर लक्ष देने की जरूरत है कारण इस में साधारण स्थिति वाले भाई बहनों का गुजारा सुभिता से हो सक्ता हैं वास्ते प्रत्येक प्रान्त व ग्रामों मे हुन्नर-उद्योगशाला की जरूरत है.

(४) गोडवाड़ में ऐसे ग्राम थोड़े होंगे कि जहाँ जाति न्याति संबंधी कलेश–धड़ा–तड़ो न हो। इससे जाति को बडा भारी नुकशान हुआ और होता जा रहा है वास्ते एक सुलेह सभा की भी परमावश्यक्ता है। शेष आगे

"एक शुभचिंतक"